भूमिका

श्री स्वामी गोविन्ददासजी मेरे एक पूर्वज थे जो इटावा में आकर बस गये थे। उनके पिता श्री खड्गमणि नरवर राज्य के दीवान थे और स्वामीजी का जन्म ग्वालियर (शंकरपुर) में हुआ था। वे प्रकाण्ड पण्डित और श्री सम्प्रदाय के आचार्य थे। उन्होंने 'प्रपत्ति वैभव' नामक एक ग्रन्थ हिन्दी में लिखा था। 'रामाश्वमेध' काव्य के रचयिता मधुसूदनदास उनके शिष्य थे। उन्होंने 'रामाश्वमेध' के आरम्भ में लिखा है—

श्री गोविंदवर दास, जिन प्रपत्ति वैभव कियौ।
तिन मोहि कीन प्रकास बरनहुँ रघुवर-मख-कथा।

रामचरितमानस के संस्कृत काव्य रूपान्तरकार स्वामी श्रीमन्नारायणाचार्य स्वामी गोविन्ददासजी के पौत्र और शिष्य थे। प्रपत्ति वैभव का रचना काल संवत् १८२१ और रामाश्वमेध का संवत् १८८३ है। यह काव्यान्तर इन तिथियों के बीच में हुआ। अनुमान है कि वह १८५० वि० के लगभग हुआ होगा। रामाश्वमेध रामचरितमानस की भाषा और छन्द में लिखा गया है और आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार उसका काव्य इतना उत्कृष्ट है कि वह रामायण का परिशिष्ट माना जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि उस युग में इटावे ऐसे पच्छिमी क्षेत्रों में भी रामचरितमानस का पर्याप्त प्रचार हो गया था।

कई कारणों से श्रीमन्नारायणाचार्य का किया हुआ मानस का काव्यान्तर लुप्त हो गया, उसकी खोज जारी है। किन्तु उसके जो दो काण्ड (अरण्य और सुन्दर) मिले उन्हें मैंने मानस चतुःशती के अवसर पर छपा दिया था। विद्वानों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। उस संस्करण में छपी डा० विद्यानिवास मिश्र की प्रस्तावना इस पुस्तक में भी दे दी गयी है जिससे इस रूपान्तर का महत्व और विशेषताएँ स्पष्ट हो जायेंगी।

अनुवाद करना एक कला है। अनुवाद दो तरह के होते हैं: (१) शब्दानुवाद और (२) भावानुवाद। शब्दानुवाद ठीक होने पर भी जिस भाषा में किया जाता है बहुधा उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं होता, और 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' न्याय से वह मूल के भाव और सौन्दर्य को भलीभाँति व्यक्त नहीं कर पाता क्योंकि उसमें भाव पर बल न देकर शब्दों पर बल दिया जाता है। भावानुवाद भी यदि वह मूल के आशय मात्र को लेकर किया जाय तो वह भी मूल से बहुत भिन्न हो सकता है। अनुवाद का सिद्धान्त एक अंग्रेज विद्वान ने बतलाया है—**We translate ideas, not words** अर्थात् हम भावों का अनुवाद करते हैं न कि शब्दों का। अनुवाद का

उद्देश्य यह होना चाहिए कि जिस भाषा में अनुवाद किया जाय उसे पढ़ते समय वह अनुवाद न मालूम होकर मूल मालूम पड़े, किन्तु मूल के भाव, आशय और सौन्दर्य को अधिकतम व्यक्त कर सके। ऐसा ही अनुवाद सर्वोत्तम है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम संस्कृत के चार श्लोकों के हिन्दी अनुवाद के नमूने दे रहे हैं। उन अनुवादों को मूल के भावों और सौन्दर्य से मिलाने से हम जो कहना चाहते हैं, वह स्पष्ट हो जायगा। शार्ङ्गधरपद्धति का यह श्लोक और स्व० पंडित किशोरीलाल गोस्वामी का उसका अनुवाद देखिए :

भ्रातः कोकिल कूजितेन किमलम् नाद्यापितर्घ्यो गुण—
स्तूष्णीं तिष्ठ विशीर्ण पर्ण पटलच्छन्नः क्वचित्कोटरे।
प्रोद्दाम द्रुम संकटे कटुरटत्काकावली संकुलः
कालोऽयं शिशिरस्य संप्रति सखे नायं वसन्तोत्सवः॥

कोकिल मीत ! न बोल कछू कहु मूढ़न ने गुन जान्यों कितैं कब ?
यातें रहौ चुप होय कछू दिन सूखे पलाश के कोटर में दबि।
ऊंचे महीरुह की फुनगीन पै बोलत काक कठोर रवै अब,
ये पतझार के द्यौस हैं रे ! तुहू बोलियो फेरि वसन्त लगै जब।

मूल में "विशीर्ण पटलच्छन्नः" है जिसे स्पष्ट करने के लिए अनुवादक ने वैसे ही एक वृक्ष करील का नाम ले दिया है। किंतु मूल का भाव और उसका सौन्दर्य अनुवाद में पूरा उतर आया है और पढ़ने में वह अनुवाद नहीं मालूम होता। शिशिर का अनुवाद 'पतझार' करके अर्थ और स्पष्ट कर दिया गया है।

दूसरा उदाहरण रघुवंश के द्वितीय सर्ग का वह प्रसंग लीजिए जिसमें राजा दिलीप के मायावी सिंह से यह कहने पर कि मेरी रक्षिता गऊ को छोड़ कर मेरे शरीर को खाकर अपनी क्षुधा शान्त करो, मायावी सिंह ने जो उत्तर दिया उसका मूल श्लोक और स्व० श्री हरदयालसिंह का उसका अनुवाद देखिए :—

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतुर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढ़ः प्रतिभासि मे त्वम्॥

एक ही छत्र अखंड-धरा-प्रभुता लही, (औ जनता अनुरागत)
कान्त कलेवर पायौ भलौ (जेहि में नवजोबन-जोति हू जागत)
तुच्छ (गऊ) के लएँ नरपाल इते बड़े बैभव कों तुम त्यागत !
(सांची कहों) यहि तें तुम मोहि विचार सों मूढ़ कछू कछू लागत॥

इसमें कोष्ठक में दिये अंश मूल में नहीं हैं पर असंगत नहीं मालूम पड़ते। अल्पस्यहेतोर्बहुहातुमिच्छन् की तृतीय पंक्ति में विस्तार कर भाव स्पष्ट कर दिया गया है। दूसरी पंक्ति में 'कान्त कलेवर' को स्पष्ट करने के लिए 'जेहि में नवजोबन

जोति ह्व जागत' जोड़ दिया गया है जो भाव को स्पष्ट करने के अतिरिक्त हिन्दी काव्य के अनुरूप अनुप्रास और मुहावरे के अनुसार है। 'साची कहों' जोड़ने से स्वभावोक्ति हो गयी है। श्लोक का भाव चमक उठा है और अनुवाद मूल मालूम होता है।

अब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के एक भावानुवाद का नमूना देखिए जो खड़ी बोली में है। यह कुमारसम्भव के पंचम सर्ग के एक श्लोक से लिया गया है। इसमें अनुवाद की भाषा की प्रकृति की पूरी तरह रक्षा करते हुए मूल के भाव को कहीं बिगड़ने नहीं दिया गया, यद्यपि एक दो शब्दों का अनुवाद नहीं हो पाया:—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाँगयष्टि-
र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।

उनको देख कम्पयुत धारण किये स्वेद के बिन्दु अनेक
चलने के निमित्त ऊपर ही किये हुए अपना पद एक
शैल मार्ग में आजाने से आकुल सरिता-तुल्य नितान्त
पर्वत सुता न चली, न ठहरी, हुई चित्र खींची सी भ्रान्त।

इसमें 'हुई चित्र खींची सी भ्रान्त' ने उस समय की स्थिति को और स्पष्ट कर दिया है। अन्त में भगवान शंकराचार्य के एक श्लोक का मेरा अनुवाद देखिए जिसमें यथासंभव शाब्दिक अनुवाद करने का प्रयत्न किया गया है किंतु हिन्दी की प्रकृति और उसकी शब्दावली की रक्षा के लिए 'भ्रमनिलय' के स्थान पर हिन्दी में प्रचलित शब्द 'भूलभुलैयाँ' का प्रयोग किया गया है।

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणाम्
तज्ज्ञेयं उपनिषद्सुनिश्चितार्थं।
धन्यास्ते भुवि परमार्थ निश्चितेहा
शेषास्ते भ्रमनिलये परिभ्रमंति॥

वहै ज्ञान है ज्ञान इन्द्रियन करै शमन नित
वहै जानिबे योग, उपनिषद सों जो निहचित
ते पृथिवी में धन्य रहें परमार्थ-मनन रत
और लोग तो भूलभुलैयन में हैं भटकत।

ये अनुवाद संस्कृत से हिन्दी में हैं और अनुवाद द्वारा मूल के भावों की पूर्णतया रक्षा करते हुए ऐसे हैं कि वे अनुवाद न मालूम होकर मूल रचना मालूम होते हैं क्योंकि उनमें मूल के भावों की रक्षा करते हुए अनुवाद की भाषा हिन्दी की प्रकृति और मुहावरों का ध्यान रखा गया है। हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद करते

समय आचार्य श्रीमन्नारायणजी ने यही बात ध्यान में रखी थी। इसी कारण उनका यह रूपान्तर मूल रचना का आनन्द देता है। डॉ० विद्यानिवास मिश्र ने इस अनुवाद की विशेषताएँ अपनी प्रस्तावना में स्पष्ट कर दी हैं।

हमने विद्यार्थियों और पाठकों की सुविधा के लिए दायें पृष्ठों पर मूल रामचरितमानस का सुन्दरकाण्ड छाप दिया है।

यह ज्ञात नहीं कि श्रीमन्नारायणाचार्यजी ने रामचरितमानस की किस प्रतिलिपि से यह काव्यान्तर किया था। कहीं कहीं रूपान्तरित संस्कृत श्लोकों की अर्थवाली चौपाइयाँ और दोहे रामचरितमानस के इस संस्करण के सुंदरकाण्ड में नहीं हैं। या तो वे चौपाइयाँ या दोहे उस प्रति में हों जिससे काव्यान्तर किया गया था और जो हमें अनुपलब्ध हैं, या स्वामीजी ने मूल के भावों का विस्तार करने के लिए उन्हें अपनी ओर से लिख दिया हो जिसकी संभावना मुझे कम मालूम होती है। रामायणों की अनेक प्रतियों में क्षेपक मिलते हैं। संभव है कि स्वामीजी की प्रति में वे क्षेपक अंश हों जो अब रामायण से निकाल दिये गये हैं। जो भी हो, सामान्यतः स्वामीजी ने मूल दोहे-चौपाइयों का सफल प्राञ्जल अनुवाद किया है जो मौलिक कृति का आनन्द देता है।

पुस्तक के अन्त में विद्यार्थियों की सुविधा के लिए कुछ कठिन और कम प्रचलित शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं।

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

प्रस्तावना

डॉ० विद्यानिवास मिश्र

भारतीय संस्कृति एवं भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि सामान्य और विशेष के वीच, लोकाचार और शिष्टाचार के वीच, व्यवस्था और सृजन के वीच निरन्तर आदान-प्रदान होता रहा है। पश्चिम के समाजशास्त्री विचारकों की यह मान्यता कि छोटी परम्परा से अर्थात् गाँवों की सीमाबद्ध परम्परा से क्रमशः बड़ी परम्परा अर्थात् महानगरीय परिवेश की परम्परा का विकास होता है, जब भारत पर लागू की जाती है तो टूट जाती है; क्योंकि यहाँ प्रारम्भ से ही ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जनपद ने नगर को; नगर ने जनपद को; लोक ने शास्त्र को; शास्त्र ने लोक को; प्राकृत ने संस्कृत को; संस्कृत ने प्राकृत को; देशी संगीत ने मार्गी को; मार्गी ने देशी को; प्रादेशिक रूप भेदों ने सार्वदेशिक मानक रूप को और सार्वदेशिक मानक रूप ने प्रादेशिक रूप भेदों को निरन्तर प्रभावित किया है। कालिदास के कुमारसम्भव में इसका एक संकेत मिलता है, जब शिव वर के रूप में आते हैं तो कालिदास कहते हैं—

द्विधा प्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधूं सुखग्राह्यनिवन्धनेन ।।

दो प्रकार की वाणियों से सरस्वती ने दम्पति की स्तुति की, वर की स्तुति संस्कारपूत संस्कृत वाणी से और वधू की स्तुति सुखपूर्वक ग्रहण की जानेवाली प्राकृत वाणी से।

इससे यह स्पष्ट सूचित होता है कि विवाह के लोकगीतों का प्रारम्भ आचार के अपरिहार्य अंग के रूप में कालिदास के काल से स्वीकृत है। इसी कारण प्राकृत कविता से प्रभावित होकर संस्कृत में मुक्तक-रचना प्रारम्भ हुई और प्राकृत गीति-नाट्यों से प्रभावित गीतगोविन्द की रचना हुई। दूसरी ओर संस्कृत की महाकाव्य-शैली से प्रभावित होकर रावणवहो, गउडवहो और कंसवहो जैसे प्राकृत महाकाव्यों की रचना हुई।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक ओर स्वयं श्रीमद्भागवत के लीलाकेन्द्रित कथा-सूत्र को अपने प्रबन्ध के संगुम्फन के लिए आधार बनाया, दूसरी ओर रामलीला को रूपायित करने के अभिप्राय से गीतगोविन्द के गीति-नाट्यात्मक क्रम को भी सामने रखकर रामचरितमानस की रचना की। उन्होंने एक नये सर्जनात्मक उद्देश्य से व्यवस्थित भक्ति-शास्त्र को लोक में प्रसृत करने के लिए भदेस-भनिति का उपयोग तो किया ही, साथ ही उन्होंने गहन से गहन दार्शनिक प्रश्नों को भी इतनी

सहजता के साथ लीला के वर्णन में वीच-बीच में खोलकर ऐसे रखा कि वे सभी प्रश्न एक नयी सक्रियता से विद्युत्चालित हो गये, एक नये विचार दर्शन के लिए वे नये सूत्र बन गये। यदि मधुसूदन सरस्वती के भक्ति रसायन को ध्यान से पढ़ा जाय तो वह रामचरितमानस के रागबोध को ही प्रामाणिकता देने के उद्देश्य से रचा दीखेगा। तुलसीदासजी ने श्रीमद्भागवत से दो भाव लेकर उनका अनेक प्रकार से अनेक स्तरों पर उन्मीलन किया। पहला भाव है कि वह भाषा व्यर्थ है जो राममय न हो और दूसरा भाव है, रामभक्ति चारों पुरुषार्थ से बड़ा परमपुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ की विशेषता यह है कि आदमी जितना ही ऊँचे धरातल पर पहुँचकर विरक्त होगा, उतनी ही अधिक उसे रामभक्ति की अतृप्ति रहेगी। इन भावों के काव्य-रूप देने में तुलसीदासजी को अधिक सफलता मिली और इस सफलता ने मधुसूदन सरस्वती को भक्तिरसायन की प्रेरणा दी होगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ रामचरितमानस के संस्कृत काव्यान्तर के रूप में श्रीमन्नारायणाचार्य द्वारा जो रचा गया, वह इसी वात को प्रमाणित करने के लिए कि चाहे कुछ संकीर्ण पण्डितों को 'भाषा' की यह रचना अच्छी न लगी हो, किन्तु ऐसे पण्डितों का एक बहुत बड़ा समुदाय देश में था, जो इस रचना का महत्त्व समझते थे और इतना महत्त्व समझते थे कि उसे शास्त्र रूप देने के लिए उसका संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत करना भी संस्कृत के गौरव के अनुरूप मानते थे। दुर्भाग्यवश इस संस्कृत काव्यान्तर के केवल दो सोपान अब तक मिले हैं, शेष आदरणीय पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी के प्रयत्न के बावजूद अभी तक प्राप्य नहीं हो सके हैं, पर इन दो सोपानों के पर्यवलोकन से ही यह प्रमाणित है कि काव्यान्तरकार ने संस्कृत में अनुवाद नहीं किया है, उन्होंने संस्कृत में नयी रचना की है। आधार तुलसीदासजी का रामचरितमानस है अवश्य, पर रामचरितमानस के पाठक को ध्यान में न रखकर संस्कृत काव्य के पाठक को ध्यान में रखते हुए ही श्रीमन्नारायणाचार्य ने यह ग्रन्थ लिखा ताकि लोकभूमि में स्थापित रामचरित संस्कृत की भावभूमि में रामचरित्र के रूप में प्रतिष्ठित हो। इसीलिए उन्होंने जगह-जगह पर स्वतंत्र उद्भावनाएँ की हैं। कहीं-कहीं वाल्मीकि को उन्होंने तुलसीदासजी की अपेक्षा अपने अनुकूल पाया। उनका उद्देश्य ज्यों का त्यों रामचरितमानस का उल्था करना नहीं था (ऐसे उल्था का उपयोग ही क्या होता, जब संस्कृत लोक प्रचलित भाषा नहीं थी, वह केवल विचार और संस्कार की भाषा थी?) उनका उद्देश्य रामचरितमानस को शास्त्रीय मर्यादा देना है। इसलिए वे उसको इस रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसमें भीतरी अर्थ-योजना तो सुरक्षित रहे पर उसको संस्कृत का गठा हुआ रूप तथा भाव-संयत अभिव्यक्ति मिले, जिससे वह संस्कृत चित्त को ग्राह्य हो और देश की शास्त्रीय चिन्तन-धारा में अपना विशिष्ट स्थान ग्रहण करे।

उदाहरण के लिए, हम यहाँ दो प्रसंग लेंगे। पहला प्रसंग जयन्त का है।

श्रीमन्नारायणाचार्य ने वाल्मीकि का अनुसरण करते हुए चरण में चोंच का आघात न कराके 'स्तनान्तर' में कराया है। इसके सिवा दूसरा और क्या प्रयोजन हो सकता है कि जयन्त के दुष्कृत्य को तीव्रतर बनाने के वाद ही उसकी ग्लानि का अववोधक संस्कृत भाव-संतुलन की दृष्टि से उचित होता? जयन्त की स्तुति के लिए कवि ने गीता के एकादश अध्याय की छन्द-योजना का प्रयोग वड़ी कुशलता के साथ किया है—

जानामि नो राम तव प्रभावं महात्मनो मूढमतिर्बलञ्च।
बाणोरगेन ग्रसित महात्मन् त्रायस्व मां मन्दमतिं विभूमन्॥
स्वकर्मजं देव फलं गतोऽस्मि देवाधिदेवेश विमूढबुद्धिः।
भ्रमंस्त्रिलोक्यां जगदीश पश्ये नान्यं विना त्वां सुखदं परात्पन्।

इस स्तुति में और रामचरितमानस की अत्यन्त संक्षिप्त आर्त्त प्रार्थना में—

त्राहि त्राहि दयाल रघुराई।
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई॥
मैं मतिमन्द जानि नहिं पाई।
निज कृत कर्म जनित फल पायों।
अब प्रभु पाहि सरन तकि आयों।

अन्तर सोद्देश्यता के स्तर में है। संस्कृत की दृष्टि से अपने दुष्कर्म के अववोध के वाद फल की भयावहता का वोध प्रवल है। भाषा में शरणागति की भावना ही प्रधान है। इसीलिए तुलसीदासजी ने—'प्रभु छाँड्यो करि छोह'—कहा है, और श्रीमन्नारायणजी ने 'तत्याज धर्मं धीः' कहा है। तुलसीदासजी ने कृपा पर बल दिया है, श्रीमन्नारायणजी ने धर्म बुद्धि पर, क्योंकि कृपा भी परात्पर ब्रह्म का धर्म है। संस्कृत काव्य परम्परा भाषा की अपेक्षा भावप्रवण कम और धर्मवोधप्रवण अधिक है। इसलिए श्रीमन्नारायणजी ने जो परिवर्त्तन किये, वे संस्कृत काव्य के पाठकों के संस्कृत चित्त को ध्यान में रख कर।

दूसरा प्रसंग सुन्दरकाण्ड में हनुमान-रावण संवाद है। रामचरितमानस में अत्यन्त संक्षिप्त, पर तीक्ष्ण भाषा में यह संवाद चलाया गया है, जिसमें 'जाके', 'जा बल', 'जो' जैसे सम्वन्धवाचक रामपरक सर्वनाम विशेषणों से प्रारम्भ करके सम्वन्ध-वाचक उपवाक्यों की लड़ी लगायी गयी है और प्रस्तुत काव्यान्तर में—"प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम्" की वार-वार पुनरुक्ति के द्वारा राम से केन्द्र को हटाकर हनुमान में स्थापित किया गया है, जो संस्कृत की दर्पस्फीत परम्परा के अनुरूप है। तुलसीदास ने निरन्तर राम को प्रधानता देकर भक्ति की विनम्रता को अधिक महत्त्व दिया है। श्रीमन्नारायणाचार्य ने हनुमान की घोषणा को अधिक विस्तार इसीलिए दिया है कि उन्हें पिछली कथाओं का स्मरण कराना ही केवल अभिप्रेत

नहीं है, बल्कि उसको एक विशाल और व्यापक संदर्भ देना भी संस्कृत की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ है। इस सन्दर्भ से केवल एक पंक्ति ही इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होगी—

धरें जो विविध देह सुरत्राता।
तुम्हसे सठन्ह सिखावनु दाता॥

(रामचरितमानस)

देवत्राता यः सतां रक्षणार्थं।
काले कालेऽनेकमूर्त्तीर्दधाति॥
त्वादृग्दुष्टानां तथा शासनार्थं।
प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम्॥

(संस्कृत रामचरितमानस)

तुलसीदासजी ने 'विविध देह' कहा है, श्रीमन्नारायणाचार्यजी ने 'अनेक मूर्ति' और उसके पूर्व 'काले-काले' जोड़कर व्यापकता और युगावर्तनशीलता का सन्दर्भ उपस्थित किया है। 'देह' में भौतिकता है, 'मूर्त्ति' में दैविकता। इसी प्रकार तुलसीदासजी ने 'सिखावनु' कहा है और श्रीमन्नारायणजी ने 'शासन', क्योंकि शासन राजधर्म का एक अंग है और धर्म की दृष्टि श्रीमन्नारायणजी को शास्त्रीय मर्यादा देने के लिए अधिक संगत प्रतीत होती है।

सोद्देश्यता के इस अन्तर के अलावा प्रस्तुत ग्रन्थ की दूसरी विशेषता उसकी सहजता और संस्कृतानुकूल संरचना है। कहीं भी यह अनुभव नहीं होता कि हम किसी ग्रन्थ का अनुवाद पढ़ रहे हैं और न यही अनुभव होता है कि इस अनुवाद में कहीं भी भाषा की छाया है। एक विस्तृत उद्धरण देकर वह बात और स्पष्ट की जा सकती है—

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहँ सकल भए बिपरीता।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।
कुवलय बिपिन कुन्त बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिधि समीरा।
कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई।
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा।
सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं।
प्रभु संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।

(रामचरितमानस).

पुनरुचे जनकजां सीते रामोऽब्रवीदिदम् ।
वियोगेन च ते सर्वं प्रतिकूलं मम प्रिये ।।
द्रुमाणां नूत्नपत्राणि कृशानुसदृशानि मे ।
पुष्पवत्तौ ममाभूतां कालरात्रिसमावुभौ ।।
सन्ति कुन्तवनानीव सरिद्युद्भवनानि मे ।
वारिदा नु जलंतप्तं तैलं वर्षन्ति मे ननु ।।
यस्याधस्ताद्वसाम्यद्य पीडयत्येव स द्रुमः ।
सर्पश्वाससमाजातास्त्रिविधा मे समीरणाः ।।
कथनेन न चाल्पत्वं याति दुःखं कदाचन ।
मदन्यः कोपि जानाति नैव तत्कथयामि किम् ।।
आतयोः सत्यतां प्रेम्णोः वेत्येकं मानसं मम ।
तत्त्वयि ज्ञेययेतेन प्रेमस्पष्टतरं मम ।।
श्रीरामवाचिकं श्रुत्वाप्रेम्णि मग्नाधरासुता ।
शरीरज्ञानरहिता निःसंज्ञा तत्क्षणेभवत् ।।

(संस्कृत रामचरितमानस)
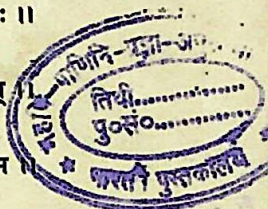
इन दोनों अवतरणों की जव हम तुलनात्मक समीक्षा करते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि नूतन उद्भावनाओं से संस्कृत काव्यान्तर वहुत हृदयग्राही हो गया है, संस्कृत काव्यान्तर में एक पंक्ति है—

'यस्याधस्ताद् वसाम्यद्य पीडयत्येव स द्रुमः'

(जिस वृक्ष के नीचे मैं वैठती हूँ, वह वृक्ष मुझे ध्यान देकर पीड़ा देता है)

इस पंक्ति के बाद त्रिविध समीर को सर्पश्वास के सदृश कहने से एक नयी अर्थवत्ता आ जाती है, न केवल समीर विषमय हो जाता है वल्कि छाया देने के लिए प्रतिश्रुत वृक्ष भी सन्तापप्रद हो जाता है और पतन की शीतलता की प्रतीति सबसे अधिक—चूँकि वृक्ष के नीचे होती हूँ, इसलिए जिस-जिस पेड़ के नीचे वैठती हूँ वही दुखदायी हो जाता है । इस वात का सन्निवेश काव्य को अधिक दुःखव्यञ्जक वना देता है । इस प्रकार तुलसीदासजी ने 'यह जान न कोई' कहा है । श्रीमन्नारायण ने वहाँ 'मदन्यः' जोड़कर दुःख की संवेदना के आत्मकेन्द्रित होने पर अतिरिक्त वल दिया है और इसके द्वारा काव्य पंक्ति को और निखार दिया है । आगे आने वाली पंक्ति में तुलसीदास के 'मम अरु तोरा' दो शब्दों को श्रीमन्नारायणाचार्यजी ने 'आवयो' के भीतर समाहित करके संस्कृत के द्विवचन की सार्थकता को तो उभारा ही है, सीता राम 'कहियत भिन्न न भिन्न' वाले भाव को भी बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है । 'तत्व' की जगह पर 'सत्यता', 'तोहि पाहीं' के जगह पर 'त्वयि' देकर रूपान्तरकार कवि ने प्रेम की एकनिष्ठता और प्रेम की अत्यन्त संश्लिष्ट अधिष्ठानता का अभिव्यञ्जन किया है।

इन नयी उद्भावनाओं से उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि संस्कृत काव्यान्तर में नयी अर्थगर्भता लायी जा सकती है, जो प्राचीन परिनिष्ठित संस्कृत काव्य के लिए भी स्पृहणीय हो सकती है।

एक दूसरा उदाहरण सूक्ष्म भाव-व्यंजना का लिया जाय। तुलसीदासजी ने सीता के मुँह से रामचन्द्रजी के प्रति यह तो कहलवाया कि—

तात शक्र सुत कथा सुनायहु।
बान प्रताप प्रभुहिं समुझायहु।।

किन्तु हनुमानजी से सन्देश कहलाते समय यह बात छोड़ गये। तुलसीदासजी ने इस बात को कहलाना शायद इसलिए उचित नहीं समझा कि हनुमानजी अपने मुँह से प्रभु को अपने पराक्रम का स्मरण कैसे करायें, परन्तु काव्य योजना की दृष्टि से, विशेष रूप से प्रबन्धकाव्य योजना की दृष्टि से, यह आवश्यक था कि सीता के मुख से जो सन्देश मिला वह कहलाया जाय—

जयन्तस्य पुनर्वृत्तं स्मारय प्राणबल्लभम्।
श्री रामबाणशक्तित्वं मदर्थं च प्रकाशय।।

उसे हनुमानजी सन्देश के अन्त में बल देकर इस प्रकार कहें—

प्रयाण समये भूयो मामुवाचेति सा सती।
स्मारय त्वं जयन्तस्य वृत्तं रामस्य मारुते।।

श्रीमन्नारायणजी ने भी यह नहीं कहलाया कि आप अपना पराक्रम स्मरण कीजिए, बल्कि केवल उस घटना की ओर संकेत कराने मात्र से ही राम का क्रोध धधकाना सीता के सन्देश का मुख्य प्रयोजन था और वह प्रयोजन करुण दशा के वर्णन मात्र से सिद्ध नहीं होता, उसके लिए पराक्रम का आवाहन करने के जयन्त के वृत्तान्त का स्मरण आवश्यक था। इस प्रकार श्रीमन्नारायणजी ने प्रबन्धकाव्य-योजना का निर्वाह बड़े ढंग से किया। यहाँ पहले श्लोक के 'प्राणवल्लभ' को दूसरे के 'रामस्य' में परिवर्तित करना भी सार्थक है। सीताजी प्राणवल्लभ को स्मरण करा रही हैं, पर मारुति तो परोक्ष रूप में राम को ही स्मरण करा सकते हैं।

ऊपर के उदाहरणों के द्वारा केवल इतना ही दिखाना अभीष्ट था कि प्रस्तुत काव्यान्तर एक मौलिक रचना है और मौलिक इसलिए कि उसमें अपनी निजी विशेषताएँ हैं। तुलसीदासजी के रामचरितमानस की प्रतिस्पर्धा से नहीं, बल्कि उसके प्रति अत्यन्त गहरी निष्ठा से ही यह काव्यान्तर रचा गया है, इसीलिए तुलसीदासजी की कथा योजना और अभीष्ट सन्देश-योजना की पूरी तरह रक्षा करते हुए संस्कृत की सहज प्रकृति का भी निर्वाह किया गया है और जिस प्रकार की प्रवाहमय भाषा में रामचरितमानस लिखा गया है, उसी प्रकार की प्रसन्न इतिहास काव्यानुकूल भाषा में रामचरितमानस के काव्यान्तर की रचना की गयी है।

यह संस्कृत और भाषा की भावभूतियों के निदर्शन की दृष्टि से तुलनात्मक साहित्य के अध्येताओं के लिए और भारतीय संस्कृति के आदान-प्रदान के आवर्त्तनों की प्रक्रिया के प्रतिमान की दृष्टि से भारतीय संस्कृति के अध्येताओं के लिए बहुत ही महत्त्व का ग्रन्थ सिद्ध होगा, मुझे इसका पूर्ण विश्वास है। तुलसी मानसचतुश्शती के महान् समारम्भों के बीच यह प्रकाशन चित्रकूट में राम की वनयात्रा के समय 'तेजपुंज लघु वयस' तापस के आगमन की तरह विनम्र, पर सार्थक अनुष्ठान है, जिसकी ओर समारोह की दुन्दुभि बजाने वालों का ध्यान भले ही न जाय, पर गोस्वामीजी के काव्यरस के मर्मज्ञों का ध्यान इस काव्यान्तर की ओर अवश्य जाना चाहिए क्योंकि यह ग्रन्थ गोस्वामीजी के प्रति संस्कृत के भावुक और दूरदर्शी पाण्डित्य की साकार कृतज्ञताज्ञापना है। हिन्दी के सबसे महनीय ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर १८वीं शती में वाल्मीकि जैसी प्रसन्न और भवभूति जैसी गम्भीर भाषा में संस्कृत में काव्य रचना की जा सकी, यह बात अपने आप गोस्वामी तुलसीदासजी को अतिरिक्त गौरव प्रदान करती है। पूज्य भैया साहब (पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी) ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके समस्त तुलसीप्रेमियों के ऋषि-ऋण की निष्कृति की है और इसके लिए वे अभिनन्दनीय हैं।

—विद्यानिवास मिश्र

अथ श्रीरामचरितमानस–रामायणम्

।। सुन्दरकाण्डः प्रारम्भः ।।

श्लोकाः ।

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं गीर्वाणशान्तिप्रदम् ।
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिम् ।
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ।। १ ।।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये ।
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे ।
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।। २ ।।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं ।
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं ।
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ।। ३ ।।

ततो जाम्बवतो वाचा शुभा हृदयहारिणी ।
श्रुता हनुमतश्चित्ते बभूवानन्दकारिका ॥ १ ॥
तावत्प्रतीक्षा कर्तव्या कन्दमूलफलानि च ।
जग्ध्वा सहित्वा दुःखानि सीतां दृष्ट्वाहमागमम् ॥ २ ॥
प्रणम्य सर्वाञ्चिच्छरसा विधायैवं मरुत्सुतः ।
निधाय हृदये रामं प्रतस्थेऽखिन्नमानसः ॥ ३ ॥
समुद्रतीरे रुचिरं समारुह्य नगं शुभम् ।
कौतुकेनैव हनुमानियेषांबुधिलङ्घनम् ॥ ४ ॥
स रामं बहुशो ध्यायन्नुत्पत्योत्पत्य वानरः ।
पादाघातेन च गिरीन् प्रेरयामास भूतले ॥ ५ ॥
रामबाण इवारूढो ययौ पवनसंभवः ।
रामदूतं विदित्वाब्धिर्मैनाकं समुवाच ह ॥ ६ ॥
हनूमान् रामदूतोऽयं लङ्कां याति विहायसा ।
श्रमापनोदनं चास्य कुरु मैनाकसत्तम ॥ ७ ॥
निशम्य सिन्धुगदितमुत्ततार जलान्नगः ।
मैनाकश्चांजलिं बद्ध्वा प्रणनाम मरुत्सुतम् ॥ ८ ॥
तं च पृष्टो वायुसुतः प्रणम्येदं वचोऽब्रवीत् ।
असंपन्ने रामकार्ये विश्रामो मम कीदृशः ॥ ९ ॥
विलोक्य वायुतनयं यान्तं लङ्कां दिवौकसः ।
बलबुद्धिपरीक्षायै सुरसां नागमातरम् ॥ १० ॥
प्रेषयन्ति स्म सागत्य हनूमन्तं वचोऽब्रवीत् ।
देवैर्दत्तस्त्वयाहारः श्रुत्वावोचत् मरुत्सुतः ॥ ११ ॥
विधाय रामकर्माहं सीतावार्तां निवेद्य च ।
तवास्यन्तर्गमिष्यामि सत्यं प्रस्थापयाद्य माम् ॥ १२ ॥
केनापि विधिनागन्तुं नादिशत्सा यदा तदा ।
हनुमान्प्रत्युवाचैनां ग्रस मातर्यथासुखम् ॥ १३ ॥
प्रपेदे योजनंसास्यं द्विगुणाङ्गोऽभवत्कपिः ।
द्व्यष्टयोजनविस्तीर्णं मुखं सा चाकरोत्ततः ॥ १४ ॥

जामवन्त के वचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥
तव लगि मोहि परिखहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंदमूल फल खाई ॥
जव लगि आवौं सीतहि देखी। होइ काज मोहि हरष विसेखी ॥
अस कहि नाइ सवन्हि कहँ माथा। चले हरषि हिय धरि रघुनाथा ॥
सिन्धु-तीर एक भूधर सुन्दर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥
वार वार रघुवीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय वल भारी ॥
जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता ॥
जिमि अमोघ रघुपति कर वाना। एही भाँति चला हनुमाना ॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥

दो०—हनूमान तेहि परसा-कर, पुनि कीन्ह प्रनाम।
रामकाज कीन्हे बिन, मोहि कहाँ विश्राम ॥१॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानै कहँ वल बुद्धि बिसेखा ॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि वाता ॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत वचन कह पवनकुमारा ॥
रामकाज करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं ॥
तव तव वदन पैठिहौं आई। सत्य कहौं मोहिं जान दे माई ॥
कवनिहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥
जोजन भरि तेहि वदन पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा ॥

तुल्यांद्वात्रिंशतामूर्ति योजनैरकरोत्कपिः ॥ १५ ॥
यथायथा हि सुरसा स्वमुखंव्याददे तदा ॥ १६ ॥
ततस्ततोहिद्विगुणां हनूमानकरोत्तनुम् ।
शतयोजनविस्तीर्णमाननं निर्ममे तथा ॥ १७ ॥
अतीवलघुरूपञ्च विदधे पवनात्मजः ।
प्रविश्य वदनंतस्याः आगतश्च पुनर्बहिः ॥ १८ ॥
शिरसा तां प्रणम्याथ विदायं समयाचत ।
प्रेषिताहं सुरैःसर्वैर्ज्ञातुं बुद्धिबलंतव ॥ १९ ॥
बलबुद्ध्यादिकं सर्वं तत्ते ज्ञातं मया कपे ।
समर्थो गुणसिन्धुस्त्वं रामकार्य्यं करिष्यसि ॥ २० ॥
एवं शुभाशिषं दत्वा सुरसा प्रस्थिता गृहम् ।
प्रसन्नात्मा वायुसुतः प्रतस्थे गिरिजे ततः ॥ २१ ॥
समुद्रस्थायिनी चैका राक्षसी भीमविक्रमा ।
विधाय राक्षसीमायामेवं सा हन्ति खेचरान् ॥ २२ ॥
उड्डीयन्ते खगा ये खे तेषां दृष्ट्वा जलान्तरे ।
प्रतिबिम्बानि गृह्णाति उत्पत्तुंतैर्न शक्यते ॥ २३ ॥
अशक्तास्ते पतन्त्यब्धौ तान् भक्षयति नित्यशः ।
तामेव मायां विदधे हनूमन्तं विलोक्य सा ॥ २४ ॥
रेरिहाणावतारेण समायां विविदे तदा ।
हत्वा तां मारुतिर्वीरः पारं प्राप महोदधेः ॥ २५ ॥
मधुलुब्धानां मधुलिहां मधुरंयत्रकूजितम् ।
वृक्षा नानाविधा यत्र फलानि कुसुमानि च ॥ २६ ॥
मनोहराःखगगणा मृगयूथाश्च यत्र वै ।
ईदृशस्य वनस्यासौ ददर्श महतीं श्रियम् ॥ २७ ॥
ततोग्रे पर्वतं दृष्ट्वा महान्तं वायुनन्दनः ।
तमारुरोह निर्भीकः समुत्प्लुत्य महाबलः ॥ २८ ॥
निर्भयत्वं पुरे शत्रोः प्रतापो नैष मारुतेः ।
उमे रामप्रतापोऽयं यःकालंभक्षितुंक्षमः ॥ २९ ॥

सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ । तुरत पवन सुत वत्तिस भयउ ॥

जस जस सुरसा वदन वढ़ावा । तासु दून कपि रूप दिखावा ॥

सत जोजन तेहि आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥

वदन पैठि पुनि वाहर आवा । माँगा विदा ताहि सिर नावा ॥

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि वल मरम तोर मैं पावा ॥

दो०—रामकाज सब करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान ॥२॥

निसिचरि एक सिन्धु महँ रहई । करि माया नभ के खग गहई ॥

जीव जन्तु जे गगन उड़ाहीं । जल विलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥

गहै छाँह सक सो न उड़ाई । एहि विधि सदा गगनचर खाई ॥

सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा । तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा ॥

ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गयउ मति धीरा ॥

तहाँ जाइ देखी वन सोभा । गूँजत चंचरीक मधु लोभा ॥

नाना तरु फल फूल सुहाए । खग मृग बृंद देखि मन भाए ॥

सैल विसाल देखि एक आगे । तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे ॥

उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥

अधिरुह्य गिरेः शृङ्गं हनुमानतिविक्रमः ।
आरुह्य दुर्गमां लङ्कामालुलोके मनोहराम् ॥ ३० ॥

समुद्रः परिखा यस्याः पर्वतादपि चोन्नताम् ।
देदीप्यमानां सौवर्णैः प्राकारैः सर्वतोवृताम् ॥ ३१ ॥

चतुष्पथापणैरम्यां वनराजिविराजिताम् ।
चारुघण्टापथैर्युक्तां वीथीभिः सुमनोहराम् ॥ ३२ ॥

अगणितगजवाजिस्यन्दनानां समूहैर्रणकुशलपदातिव्यूहवीरप्रकाण्डैः ।
वृषभकरभयूथैर्निश्चरैः कालरूपैर्बहुतरखरयूथैः पूरितां चित्ररूपाम् ॥ ३३ ॥

यस्या वनान्युपवनानि सरांसि वाप्यः कूपा विचित्ररचिताश्च मनो हरन्ति ।
कुत्रापि क्रुद्धवपुषश्च विभान्ति मल्ला अन्योन्ययुद्धकुशलालसदक्षवाटे ॥ ३४ ॥

भटा यत्रकुत्रापि कृत्वातियत्नं पुरं सर्वतो रक्षयन्तो लसन्ति ।
नरान् गा अजाश्चापिरक्षः समूहा मुधा हन्ति कुत्राप्यदन्तो वसन्ति ॥ ३५ ॥

एषां महौघजनुषां खलु राक्षसानां वृत्तं मनागपि नपार्वति वर्णनीयम् ।
तत्रापिरामशरतीर्थ इमेशरीरंसन्त्यज्य सद्गतिमिता इतिकिंचिदुक्तम् ॥ ३६ ॥

क्वापि प्रभूतमदिराघटपानमत्ता जल्पन्ति भूरिवचनानि हसन्ति भूयः ।
नृत्यन्ति पर्वतसुते प्रपतन्ति भूमौ क्रन्दन्ति भ्रान्तमनसो बहुशःक्षपाटाः ॥ ३७ ॥

अद्य द्विजाःश्रुतिविदःखलु पञ्चषाश्च व्यापादिता इतिवदन्ति सभासु केचित् ।
*केचिद्वदन्ति सुहृदोद्यसुराङ्गनाश्चास्माभिर्हृतास्समभिभूय सुरेशसेनाम् ॥ ३८ ॥

रक्षांसि दुष्टहृदयानि वदन्ति क्वापि तुष्टिर्न मेषमहिषामिषमन्तरेण ।
अस्माकमस्ति सुतरां खलु तेन सूदाहत्वापशून्वितरतक्षुधितावयंस्म ॥ ३९ ॥

गोविप्रहिंसनपराःकिल पापरूपा ये राक्षसासनसुखे कृतवैरभावाः ।
ते चापि देवसदने गमिताःक्षणेन रामेण येन तमहं सततं स्मरामि ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्रामायणेरामचरितमानसेमहाकाव्येसकलकलुषविध्वंसने
उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

---

* च स्वर्गादधृ—इति पाठान्तरम्

गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग विसेखी ।।

अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा ।।

छं०—कनक कोट विचित्र मनिकृत, सुन्दरायतना घना।

चौहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं, चारु पुर बहु विधि बना ।।

गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।

बहुरूप निसिचर जूथ अतिवल सेन बरनत नहिं बनै ।।

वन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।

नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ।।

कहुँ माल देह विसाल सैल समान अति बल गर्जहीं।

नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं ।।

करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँदिसि रच्छहीं।

कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं ।।

यहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।

रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही ।।

अथ दृष्ट्वा पुरोरक्षान् हनूमानित्यचिन्तयत् ।
लघिष्ठं रूपमास्थाय नगरे प्रविशाम्यहम् ॥ १ ॥
मसीवर्ण तदा रूपं धृत्वा पवनसम्भवः ।
देवं नरहरिं ध्यात्वा लङ्कायां प्राविशत्ततः ॥ २ ॥
मामनादृत्य रे मूढ लङ्कां विशसि निर्भयः ।
लङ्किनी तमुवाचेति निश्चरी पापरूपिणी ॥ ३ ॥
रे न जानासि दुर्बुद्धे मत्प्रभावं मनागपि ।
तस्करोऽत्रत्य मे भक्ष्यो भवतीति विनिश्चितम् ॥ ४ ॥
देहे तस्याःकपिश्रेष्ठो मुष्टिकां प्रजघान ह ।
वमन्ती रुधिरं सास्यादपतत्पृथिवीतले ॥ ५ ॥
पुनःसा सहसोत्थाय लङ्किनीनामराक्षसी ।
हस्तौ संयोज्य सभया विनयेनेदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
यस्मिन्काले रावणाय वरं दत्तं स्वयम्भुवा ।
तदैव मां समालोक्य गच्छन्तीं कथितंत्विदम् ॥ ७ ॥
मानुषं रूपमाश्रित्य त्रेतायां रामलक्ष्मणौ ।
स्वभक्तानाञ्चदेवानां हितायावतरिष्यतः ॥ ८ ॥
हृत्वा सीतां रामपत्नीं लङ्कां नेष्यति रावणः ।
तामन्वेष्टुं रामचन्द्रः स्वदूतं प्रेषयिष्यति ॥ ९ ॥
धीरस्य कपिवीरस्य तस्याघातेन राक्षसि ।
वैकल्यमेष्यति यदा तदा रक्षःकुलक्षयः ॥ १० ॥
धन्यास्मि मे महत्पुण्यं न मृषेति वचो मम ।
यन्मया लोचनाभ्यां त्वं रामदूतोऽवलोकितः ॥ ११ ॥
स्वर्गापवर्गयोः सौख्यं तुलायामधिरोपितम् ।
सतां सङ्गेन चाल्पेन न तौल्यमधिगच्छति ॥ १२ ॥
हृदि संस्थाप्य वै रामं कोशलाधिपतिं वरम् ।
प्रविश्य नगरे वीर सर्वं कार्य्यं विधीयताम् ॥ १३ ॥
विषं सुधारिपुर्मित्रं सागरो गोष्पदं भवेत् ।
अग्निःशीतो लघुर्मेरू रामचन्द्रकृपेक्षणात् ॥ १४ ॥

दो०–पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पइसार ॥

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥
जानेहि नहीं मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर वमत धरनी ढनमनी ॥
पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर विनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत विरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥
बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

दो०–तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥४॥

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥

अतिलघ्वीं तनुर्कृत्वा वायुपुत्रःप्रतापवान् ।
स्मृत्वा श्रीरामपादाब्जं नगरे प्रविवेश च ॥ १५ ॥
दशाननस्य भवनेऽवक्तव्ये स गतस्ततः ।
तत्रानिरीक्ष्य वैदेहीं हृदये समचिन्तयत् ॥ १६ ॥
अत्रापि नास्ति वैदेही यामन्वेष्टुं समागतः ।
कुत्र यामि क्व पश्यामि क्व सीतामाप्नुयामहम् ॥ १७ ॥
अविलोक्यैव चेत्सीतां गच्छेयं पुनरप्यहम् ।
दर्शयिष्यामि वदनं कथं रामस्य सम्मुखे ॥ १८ ॥
मम हास्यं करिष्यन्ति नूनं सर्वे वलीमुखाः ।
रामानुजश्च सौमित्रिरवश्यं दर्शयेद् भयम् ॥ १९ ॥
जाम्बवाञ्जानकीक्षेमं मामुपेत्यानुपृच्छते ।
किमुत्तरंतस्य दास्ये तत्र गत्वा तदात्वहम् ॥ २० ॥
निश्चरा बहवश्चात्र निवसन्ति भयङ्कराः ।
तेषामेकतमोप्यत्र सीतावार्तां न भाषते ॥ २१ ॥
कं पृच्छेयं तथोत्कोचं कस्मैदद्यामहं किल ।
यः सीतां रामचन्द्रस्य भार्य्यां मामद्य दर्शयेत् ॥ २२ ॥
मृगयित्वा प्रतिगृहं दृष्ट्वा योधान्बहूस्ततः ।
*शयनान्न च रामस्य पत्नीं सीतां स दृष्टवान् ॥ २३ ॥
ततो विलोकयामास गृहमेकं सुशोभनम् ।
यत्र निर्मापितं चासीद्भिन्नंश्रीहरिमन्दिरम् ॥ २४ ॥
रामनामाङ्कितंतत्र तुलसीवृक्षसंयुतम् ।
अवर्णनीयशोभाढ्यं दृष्ट्वा प्रीतोऽभवत्कपिः ॥ २५ ॥
ततःस चिन्तयामास सन्ति रक्षोगणा इह ।
क्व सज्जनानामावासो लङ्कायां बत सम्भवेत् ॥ २६ ॥
एवंचित्ते तर्कयति तत्रस्थे पवनात्मजे ।
रावणस्यानुजस्साधुरबुध्यत विभीषणः ॥ २७ ॥

---

* न रावणस्य सदने साध्वीं—इति पाठान्तरम्

गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही ।।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना ।।
मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ।।
गएउ दसानन मंदिर माँही। अति विचित्र कहि जात सो नाहीं ।।
सयन किये देखा कपि तेही। मंदिर महँ न दीखि वैदेही ।।

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न वनावा ।।
रामनाम अंकित गृह सोहा। वरनि न जाइ देखि मन मोहा ।।

दो०—रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ, देखि हरष कपिराइ ।।५।।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर वासा ।।
मन महँ तरक करै कपि लागा। तेही समय विभीषन जागा ।।

जजाप रामरामेति शयनादुत्थितस्तदा ।
ततोविज्ञाय तं संतं जहर्ष हनुमाँस्तदा ॥ २८ ॥
यतो वैसाधुसंसर्गात्कार्यहानिर्न जायते ॥ २९ ॥

हनूमान्ब्राह्मणो भूत्वाऽश्रावयद्वचनं तदा ।
वचःश्रुत्वा समुत्थाय समायातो विभीषणः ॥ ३० ॥

प्रणम्य कुशलंपृष्ट्वा पुनरूचे विभीषणः ।
वृत्तं कथय वो विप्र कोऽसि कस्मादिहागतः ॥ ३१ ॥

अवश्यं हरिभक्तेषु त्वंकोपि इति निश्चितम् ।
त्वयि प्रीतिर्मम हृदि प्रतीतिरितिजायते ॥ ३२ ॥

यद्वात्वं रामचन्द्रस्य भक्तो दीनानुरागिणः ।
महाभागं विधातुं मां मत्समीपे समागतः ॥ ३३ ॥

ततो हनुमता प्रोक्तं रामवृत्तं स्वनाम च ।
श्रुत्वा तत्पुलकिततनुः स्मृत्वा रामगुणानभूत् ॥ ३४ ॥

ततो हनुमता पृष्टः सखे सह निशाचरैः ।
नक्तंदिवं निवससि धर्मं पालयसे कथम् ॥ ३५ ॥

विभीषणस्ततोवोचद्दन्तेषु रसनायथा ।
दीना वसति भो वीर तथैव निवसाम्यहम् ॥ ३६ ॥

भ्रातर्ज्ञात्वामामनाथं कदापि च रघूद्वहः ।
वराके मयि कारुण्यं कुर्य्यादितिवदद्भुतम् ॥ ३७ ॥

तामसीयंतनुर्मेस्ति साधनं नापिविद्यते ।
श्रीरामस्य पदाम्भोजप्रीतिः स्वान्तेपि मे नहि ॥ ३८ ॥

अद्याशा मे समुत्पन्ना भवतो दर्शनादियम् ।
करिष्यति दयां रामो मयि नात्र विचारणा ॥ ३९ ॥

भवादृशां सज्जनानां श्रीरामस्यकृपां विना ।
दर्शनं दुर्लभं लोके तत्प्राप्तं मेयतस्ततः ॥ ४० ॥

रामस्यानुग्रहेणैव भवता दर्शितं वपुः ।
अन्यथागमनं तेत्राकस्मात् किमु भवेदिदम् ॥ ४१ ॥

राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सन हठि करिहौं पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी ॥
विप्र रूप धरि वचन सुनाए। सुनत विभीषन उठि तहँ आए ॥
करि प्रनाम पूछी कुसलाई। विप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह राम दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन वड़भागी ॥

दो०—तब हनुमन्त कही सब, राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥६॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ विचारी ॥
तात कवहुँ मोहिं जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥
तामस तन कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अव मोहि भा भरोस हनुमंता। विनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ॥
जौ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम मोहि दरस हठि दीन्हा ॥
सुनहु विभीपन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥

ततोऽब्रवीद्वायुपुत्रो विभीषणसखे शृणु ।
प्रीतिर्भक्तेषु सततं रामचन्द्रःकरोति हि ॥ ४२ ॥
कथ याहं कुलीनः किं कपिर्नीचोतिचञ्चलः ।
प्रातर्यो मम नामाह स नैवाप्नोति भोजनम् ॥ ४३ ॥
तस्मिन्दिने महानीच ईदृशोहं न संशयः ।
तादृशेप्यधमे रामो मयि किन्नाकरोत्कृपाम् ॥ ४४ ॥
एवमुक्त्वागुणांस्तस्य स्मारं स्मारं पुनःपुनः ।
आञ्जनेयो महाबाहुरभवत्साश्रुलोचनः ॥ ४५ ॥
विभीषणं पुनरुवाच हनुमानतिहर्षितः ।
अपरं शृणुरामस्य प्रभुत्वं गदतो मम ॥ ४६ ॥
सदा ददाति दीनेभ्यो गौरवं महदद्भुतम् ।
एवंविधं स्वामिनं ये ज्ञात्वाकुर्वन्ति नो हितम् ॥ ४७ ॥
विस्मृत्य तं प्रवर्त्तन्ते नित्यं वैषयिके सुखे ।
दुःखं लभन्ते ते नूनमस्मिन्संसारसागरे ॥ ४८ ॥
कुर्वन्रामकथामेकं श्रुतिसौख्यमवाप तु ।
ततो विभीषणः प्राह सीताविषयिकां कथाम् ॥ ४९ ॥
यथा सा जानकी तत्र रुद्धा तिष्ठति कानने ।
श्रुत्वा तां हनुमानूचे दिदृक्षेहं च जानकीम् ॥ ५० ॥
तस्याःसन्दर्शने युक्तिं विभीषण उवाच तम् ।
तां निशम्याञ्जनीपुत्रः प्रतस्थे तस्य चाज्ञया ॥ ५१ ॥
विभीषणोक्तं रूपं स कृत्वा तत्र जगाम च ।
अशोककानने यत्र श्रीराममहिषी स्थिता ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा तां मनसा तत्र प्रणम्य कपिकुञ्जरः ।
द्वौ यामौयापयामास यामिन्यास्तरुसंस्थितः ॥ ५३ ॥
कृशाङ्गयष्टिं शिरसि जटावेणीधरां वराम् ।
रामचन्द्रगुणश्रेणीं जपन्तीं दीनमानसाम् ॥ ५४ ॥
श्रीरामचन्द्रपदयोर्निमग्नशुचिमानसाम् ।
निरीक्ष्यमाणां स्वपदो निम्नदृष्टिमधोमुखीम् ॥ ५५ ॥

कहहु कवन मैं परम कुलीना । कपि चंचल सबही विधि हीना ।।

प्रात लेइ जो नाम हमारा । तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ।।

दो०—अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर ।

कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन, भरे विलोचन नीर ।।७।।

जानतहू अस स्वामि बिसारी । फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ।।

एहि विधि कहत राम गुन ग्रामा । पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ।।

पुनि सब कथा विभीषन कही । जेहि विधि जनकसुता तहँ रही ।।

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता । देखी चहौं जानकी माता ।।

जुगुति विभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत विदा कराई ।।

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवाँ । वन असोक सीता रह जहँवाँ ।।

देखि मनहिं महँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहि बीति जात निसि जामा ।।

कृस तनु सीस जटा यक बेनी । जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी ।।

दो०—निज पद नयन दिये मन, राम चरन महँ लीन ।

परम दुखी भा पवनसुत, निरखि जानकी दीन ।।८।।

निरीक्ष्यपल्लवाच्छन्नो हनूमानतिदुःखितः ।
विचारयामास तदा कमुपायं करोम्यहम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्रामायणेरामचरितमानसेमहाकाव्येकलिकलुषविध्वंसने उमामहेश्वर संवादे सुन्दरकाण्डे द्वितीय सर्गः ॥ २ ॥

अथ यत्र स्थिता सीता तदैव तत्र रावणः ।
बहुस्त्रीभिःपरिवृतश्चित्रवेषःसमागतः ॥ १ ॥

सामादिभिरुपायैःस उपच्छन्दयितुं तदा ।
जानकीं विविधभावैर्यतमानोभ्यवर्तत ॥ २ ॥

उवाच जानकीं दुष्टः शृणु सुन्दरि जानकि ।
प्रतिजाने तवाग्रेऽहं यत्तत्सत्यं न संशयः ॥ ३ ॥

मन्दोदर्यादिका भार्याः सर्वा दास्यो भवन्तु ते ।
सकृदेव ममाग्रे त्वं विलोकय शुचिस्मिते ॥ ४ ॥

तृणं धृत्वान्तरेसीता स्मृत्वा राममतिप्रियम् ।
उवाच रामबाणस्य पाप नास्ति स्मृतिस्तव ॥ ५ ॥

दशास्य शृणु मद्वाक्यं खद्योतप्रभया क्वचित् ।
विकाशमेति नलिनी किं मामर्थयसे मुधा ॥ ६ ॥

चोरयित्वा रहःस्थाम्मां श्रीरामरहिताश्रमात् ।
नीति वान्नहि ते लज्जा जायते रेऽधमाधम ॥ ७ ॥

सीतामुखात्स्वं खद्योतमिव श्रुत्वा दशाननः ।
रामं चार्कनिभं रोषात्कोशात्खड्गंचकर्ष ह ॥ ८ ॥

उवाच सीतां हे सीते त्वया मेऽपकृतं कृतम् ।
तेनानेनासिना तेऽद्य शीर्षंछेत्स्याम्यहं द्रुतम् ॥ ९ ॥

यद्वा मे वचनं सत्यं जानीहि जनकात्मजे ।
तवानेन वियोगेन मरणं मम जायते ॥ १० ॥

ततो ब्रवीज्जनकजा शृणु रे शठ रावण ।
भुजमिन्दीवरनिभं रामचन्द्रस्य वा तव ।
असिर्मम हृदि स्थाता मयायं निश्चयःकृतः ॥ ११ ॥

तरु पल्लव महँ रहा लुकाई । करै विचार करौं का भाई ॥

तेहि अवसर रावन तहँ आवा । संग नारि वहु किए वनावा ॥

वहु विधि खल सीतहि समुझावा । साम दाम भय भेद दिखावा ॥

कह रावन सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सव रानी ॥

तव अनुचरी करौं पन मोरा । एक वार विलोकु मम ओरा ॥

तृन धरि ओट कहति वैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कवहुँ कि नलिनी करइ विकासा ॥

अस मन समुझु कहति जानकी । खल सुधि नहिं रघुबीर वान की ॥

सठ सूने हरि आनेहि मोही । अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥

दो०—आपुहिं सुनि खद्योत सम, रामहिं भानु समान ।
परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसिआन ॥९॥

सीता तैं मम कृत अपमाना । कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना ॥

नाहिं त सपदि मानु मम वानी । सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर । प्रभु भुज करि कर सम दसकन्धर ॥

सो भुज कंठ कि तव असि घोरा । सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ॥

रावणास्ति पुनःसीता निर्भयैनमभाषत ।
हे चन्द्रहास त्वं शीतनिशानिशितधारया ॥ १२ ॥
श्रीरामविरहज्वालासंतापं मम नाशय ।
दशाननो निशम्यैवं सीतां हन्तुमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥
नीत्या प्रबोधयामास तदा मन्दोदरी पतिम् ।
तत आहूय सकला राक्षसीः प्राह रावणः ॥ १४ ॥
यूयं त्रासयताभीक्ष्णं मासमेनामनेकधा ।
तदापि नानुकूला चेद्धनिष्याम्यसिनामुना ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा गृहं याते रावणे निश्चरीगणाः ।
घोराणि धृत्वा रूपाणि त्रासयन्तिस्म जानकीम् ॥ १६ ॥
काचिन्निशाचरीनाम्ना त्रिजटाऽतिविवेकिनी ।
रामपादरता सा चाहूय सर्वा निशाचरीः ॥ १७ ॥
उवाच सीतां संसेव्य कुरुध्वं हितमात्मनाम् ।
श्रावयामास च ततः स्वप्नमात्मनिरीक्षितम् ॥ १८ ॥
हे राक्षस्य इमां लङ्कां कश्चनाज्वालयत्कपिः ।
निशाचराणां महतीं सेनामपि जघान सः ॥ १९ ॥
निकृत्तविंशतिभुजो नग्नमुण्डितरावणः ।
याम्यां यातिखरारूढो लङ्कामाप विभीषणः ॥ २० ॥
घोषितो रामविजयः सन्ताड्य डिण्डिमञ्जनैः ।
श्रीरामेण पुनःसीता समानीता निजान्तिके ॥ २१ ॥
स्वप्नेदृष्टं मया चैतत्सत्यमेवभविष्यति ।
श्रुत्वैतत्तास्तु सन्त्रस्ताःसीताङ्घ्रिप्रणतिं गताः ॥ २२ ॥
इतस्ततोगताः सर्वा मिलित्वा जानकीं तदा ।
अशोचदितिमासान्ते दशास्यो मां हनिष्यति ॥ २३ ॥
बद्ध्वाञ्जलिं ततःसीता त्रिजटामब्रवीदिदम् ।
मातस्त्वमेव चास्माकं विपत्तौ सहचारिणी ॥ २४ ॥
दुस्सहो रामविरहः सोढुं नैवाद्य शक्यते ।
देहन्त्यजामि तस्मात्त्वं मा चिरं यत्नमाचर ॥ २५ ॥

चन्द्रहास हरु मम परितापं । रघुपति विरह अनल संजातं ।।

सीतल निसित वहसि बर धारा । कह सीता हरु मम दुख भारा ।।

सुनत बचन पुनि मारन धावा । मयतनया कहि नीति बुझावा ।।

कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई । सीतहिं वहु विधि त्रासहु जाई ।।

मास दिवस महुँ कहा न माना । तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना ।।

दो०—भवन गयउ दसकन्धर, इहाँ पिसाचिनि वृन्द ।
सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मन्द ।।१०।।

त्रिजटा नाम राछसी एका । राम चरन रति निपुन विबेका ।।

सबहिं बुलाइ सुनाएसि सपना । सीतहिं सेइ करहु हित अपना ।।

सपने वानर लंका जारी । जातुधान सेना सब मारी ।।

खर आरूढ़ नगन दससीसा । मुंडित सिर खण्डित भुज बीसा ।
एहि विधि सो दच्छिन दिसि जाई । लंका मनहुँ विभीषन पाई ।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई । तब प्रभु सीता बोलि पठाई ।।

यह सपना मैं कहौं पुकारी । होइहि सत्य गए दिन चारी ।।

तासु वचन सुनि ते सब डरीं । जनकसुता के चरनन्हि परीं ।।

दो०—जहँ तहँ गईं सकल तब, सीता कर मन सोच ।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच ।।११।।

त्रिजटा सन बोली कर जोरी । मातु विपति संगिनि तैं मोरी ।।

तजौं देह करु बेगि उपाई । दुसह बिरह अब नहिं सहि जाई ।।

काष्ठान्यानीय मातर्मे चितामाशु प्रकल्पय ।
ततोनलं समानीय दहमान्त्वं मम प्रिये ॥ २६ ॥

दक्षे सत्यां मयि प्रीतिं स्वकीयां कर्तुमर्हसि ।
का सोढुं शक्नुयाच्छ्रोत्रशूलंरावणभाषितम् ॥ २७ ॥

श्रुत्वा वाक्यंतु त्रिजटा गृहीत्वा तत्पदद्वयम् ।
प्राबोधयच्छ्रीरामस्य वर्णयित्वा पराक्रमम् ॥ २८ ॥

निशायां नैवलभ्येत सुकुमार्यत्र पावकः ।
इत्युक्त्वा त्रिजटा तस्मात्स्थानाच्च स्वगृहं ययौ ॥ २९ ॥

उवाच जानकी भूयः प्रतिकूलो विधिर्मयि ।
पावकोऽपि न लभ्येत न च शोको विनश्यति ॥ ३० ॥

आकाशे चावलोक्यन्ते स्फुटा अङ्गारका इमे ।
ममाभाग्यात्र चैकोपि भूमावायाति हन्त हा ॥ ३१ ॥

अग्निःसूर्यश्च शीतांशुर्न पातयति पावकम् ।
हतभाग्यां च मां मत्वा मन्येहं नात्रसंशयः ॥ ३२ ॥

प्रार्थनां शृणु हेऽशोक सत्यं कुरु निजाह्वयम् ।
शोकं मम हराद्य त्वं श्रीरामविरहोद्भवम् ॥ ३३ ॥

पत्राणि ते नूतनानि पावका इव सर्वतः ।
देहि मे पावकं साधो याच्ञाभङ्गं न मे कुरु ॥ ३४ ॥

विलोक्य सीतां हनुमान् विरहेणातिव्याकुलाम् ।
तत्क्षणं कल्पसदृशममन्यत कपिस्तदा ॥ ३५ ॥

ततः स हृदिसंचिन्त्य मुद्रिकामक्षिपत्तदा ।
अशोकप्रत्तमङ्गारं मत्वा जग्राह जानकी ॥ ३६ ॥

रामनामाङ्कितंनैव रत्नेन जटितां शुभाम् ।
मनोहरां मुद्रिकां तां ददर्श जनकात्मजा ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वा चकितचित्ताभूत्परिचीयाङ्गुलीयम् ।
हर्षेण च विषादेन विवशा व्याकुलाभवत् ॥ ३८ ॥

अजय्यं श्रीरामचन्द्रं न जेतुंकोऽपिनुशक्नुयात् ।
अनिर्मेयंमाययेदं तदा सीतेत्यतर्कयत् ॥ ३९ ॥

आनि काठ रचु चिता वनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥

सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम वानी॥

सुनत वचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप वल सुजस सुनाएसि॥

निसि न अनल मिल सुन सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलिहिं न पावक मिटिहि न सूला॥

देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकौ तारा॥

पावक मय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहिं जानि हतभागी॥

सुनहि विनय मम विटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥

देखि परम विरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥

सो०—कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार—दीन्ह, हरषि उठि कर गहेउ॥१२॥

तव देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर॥

चकित चितव मुँदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदय अकुलानी॥

जीति को सकै अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहि जाई॥

अनेकधा तर्कयन्तीं सीतां विज्ञाय वानरः ।
मधुरेणैव वाक्येन बभाषे हनुमानपि ॥ ४० ॥
रामचन्द्रगुणर्युक्तां भूतपूर्वां शुभां कथाम् ।
मनो निधाय तां श्रुत्वा सीतादुःखं क्षयं गतम् ॥ ४१ ॥
ततो जनकजोवाच कर्णामृतमिमांकथाम् ।
श्रावयामास यो मह्यमाविर्भवति किं न सः ॥ ४२ ॥
तदाजगाम हनुमान् जानक्यास्तु समीपतः ।
तं दृष्ट्वा विस्मिता भूत्वा स्थिता सीता पराङ्मुखी ॥ ४३ ॥
मातर्जानकि रामस्य दूतोहं नात्रसंशयः ।
शपथेन ब्रवीम्येतद्रामस्येत्याह वानरः ॥ ४४ ॥
मुद्रिकेयं मयानीता दत्ता रामेण मे शुभा ।
प्रत्ययार्थं तु मातस्तेऽभिज्ञानमिदमेव हि ॥ ४५ ॥
पप्रच्छ जानकी भूयो नरवानरयोःकथम् ।
सङ्गतिश्चेति हनुमानाचख्यौ सा यथाभवत् ॥ ४६ ॥
सत्यं कपिवचः श्रुत्वा हृदि जातो विनिश्चयः ।
सीतायास्तञ्चरामस्य दासं ज्ञातवती सती ॥ ४७ ॥
ततःप्रीतमनाःसीता तं ज्ञात्वा रामकिङ्करम् ।
रोमाञ्चिततनुः प्रीत्या बभाषे पवनात्मजम् ॥ ४८ ॥
श्रीरामविरहाम्भोधौ मज्जन्त्या मम सम्प्रति ।
आञ्जनेय कपीश त्वं जलयानमभूरिति ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्रामायणेरामचरितमानसेमहाकाव्येसकलकलिकलुषविध्वंसने
उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अधुना रघुनाथस्य सानुजस्य ममाग्रतः ।
कुशलं ब्रूहि हेवीर सत्वरं खरघातिनः ॥ १ ॥
कोमलामलचेतास्स कृपालू रघुनन्दनः ।
मदर्थं किं विभर्त्यद्य नैष्ठुर्य्यकेन हेतुना ॥ २ ॥
भक्तानां सुखदो यस्य स्वभावो हनुमन्सदा ।
स कदाचिन्मामपि स्मरतीति वद द्रुतम् ॥ ३ ॥

सीता मन विचार कर नाना । मधुर वचन बोलेउ हनुमाना ॥

रामचन्द्र गुन वरनै लागा । सुनतहि सीता कर दुख भागा ॥

लागीं सुनै श्रवन मन लाई । आदिहु ते सव कथा सुनाई ॥
श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई । कही सो प्रगट होत किन भाई ॥
तव हनुमंत निकट चलि गयऊ । फिरि बैठीं मन विसमय भयऊ ॥

राम दूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुनानिधान की ॥

यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥

नर वानरहिं संग कहु कैसे । कही कथा भइ संगति जैसे ॥

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास ।
जाना मन क्रम बचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥१३॥

हरिजन जानि प्रीति अति वाढ़ी । सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥

बूड़त विरह जलधि हनुमाना । भयउ तात मो कहँ जलजाना ॥

अव कहु कुसल जाउँ वलिहारी । अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥

कोमलचित कृपालु रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥

सहज वानि सेवक सुखदायक । कवहुँक सुरति करत रघुनायक ।

कदापि शीतले तात भवतां नयने इमे ।
दृष्ट्वा श्यामं मृदुवपू रामचन्द्रस्य मे पुनः ।।
हा नाथ विस्मृतात्यर्थमित्युक्त्वा वक्तुमक्षमा ।
अश्रुप्रवाहपूर्णाक्षी तूष्णीं सीता स्थिताभवत् ।। ४ ।।
विरहव्याकुलां सीतां संप्राप्तां तादृशीं दशाम् ।
निशम्य हनुमानाह सान्त्वयन्मृदुना गिरा ।। ५ ।।
मातः कुशलिनौ वीरौ वर्तेते रामलक्ष्मणौ ।
किन्तु दुःखेन ते नूनं दुःखितावेव सर्वदा ।। ६ ।।
मातर्मनसि जानीहि किमर्थमुन्मनायसे ।
तव स्नेहाद्द्विगुणितो रामस्नेहस्त्वयि सदा ।। ७ ।।
अम्बाद्य धैर्यमालम्ब्य रामस्य श्रृणु वाचिकम् ।
साश्रुगद्गद्वाग्जात इत्युक्त्वा हनुमांस्तदा ।। ८ ।।
पुनरूचे जनकजां सीते रामोऽब्रवीदिदम् ।
वियोगेन च ते सर्वं प्रतिकूलं मम प्रिये ।। ९ ।।
द्रुमाणां नूत्नपत्राणि कृशानुसदृशानि मे ।
*पुष्पवन्तौ ममाभूतां कालरात्रिसमावुभौ ।। १० ।।
सन्ति कुन्तवनानीव सरिद्युद्भूवनानि मे ।
वारिदा नु जलंतप्तं तैलं वर्षन्ति मे ननु ।। ११ ।।
यस्याधस्ताद्वसाम्यद्य पीडयत्येव स द्रुमः ।
सर्पश्वाससमाजातास्त्रिविधा मे समीरणाः ।। १२ ।।
कथनेन न चाल्पत्वं याति दुःखं कदाचन ।
मदन्यः कोपि जानाति नैव तत्कथयामि किम् ।। १३ ।।
आवयोःसत्यतां प्रेम्णो वेत्त्येकं मानसं मम ।
तत्त्वयि ज्ञेयमेतेन प्रेमस्पष्टतरं मम ।। १४ ।।
श्रीरामवाचिकं श्रुत्वाप्रेम्णि मग्ना धरासुता ।
शरीरज्ञानरहिता निःसंज्ञा तत्क्षणेभवत् ।। १५ ।।

---

*शशी भानुसमो जातः कालिरात्रिसमा निशा—इति पाठान्तरम् ।

कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता ।।

वचन न आव नयन भरि वारी । अहह नाथ हौं निपट बिसारी ।।

देखि परम बिरहाकुल सीता । बोला कपि मृदु वचन विनीता ।।

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता । तव दुख दुखी सु कृपानिकेता ।।

जनि जननी मानहु जिय ऊना । तुम्ह ते प्रेम राम के दूना ।।

दो०—रघुपति कर संदेस अब, सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर ।।१४।।

कहेउ राम वियोग तव सीता । मो कहँ सकल भए बिपरीता ।।

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू । काल निसा सम निसि ससि भानू ।।

कुवलय बिपिन कुन्त वन सरिसा । वारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।

जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ।।

कहेहू तें कछु दुख घटि होई । काहि कहौं यह जान न कोई ।।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ।।

सो मन सदा रहत तोहि पाहीं । जानु प्रीति रस एतनेहिं माहीं ।।

प्रभु संदेस सुनत बैदेही । मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ।।

उवाच हनुमान् मातः रामं भक्तसुखप्रदम् ।
स्मरस्व हृदयेधैर्य्यं धारयाद्य धरात्मजे ॥ १६ ॥
प्रभुत्वं रामचन्द्रस्य हृदये संप्रधारय ।
मदीयंवचनं श्रुत्वा कातरत्वं त्यजाधुना ॥ १७ ॥
पतङ्गा इवरक्षांसि रामबाणः समोऽग्निना ।
मातराश्वसिहि क्षिप्रं मत्वा दग्धानि तानि च ॥ १८ ॥
यदि रामोविजानीयान्मातस्त्वामत्रसंस्थिताम् ।
आनेतुं शीघ्रमागच्छेन्न विलम्बेत सर्वथा ॥ १९ ॥
हर्तुंरक्षस्तमःस्तोमं सत्यं जानीहि जानकि ।
अचिराद्भविता रामनाराचतपनोदयः ॥ २० ॥
रामस्य शपथंकृत्वा तथ्यं वच्मि तवाग्रतः ।
न रामाज्ञेति मातस्त्वां न नयामि सहात्मना ॥ २१ ॥
धैर्य्यंधारय भो मातः कतिचिद्दिवसानिह ।
सनाथःकपिभिर्नाथो रघुवीरः समेष्यति ॥ २२ ॥
निहत्य राक्षसान्सर्वान् स च नेष्यति त्वां तदा ।
त्रिषु लोकेषु गायन्ति तद्यशो नारदादयः ॥ २३ ॥
*त्वादृशाः कपयः क्वाचिद्राक्षसातिबला भटाः ।
संशयोमेऽतिहृदये बभाषेथेति जानकी ॥ २४ ॥
श्रुत्वैतद्धनुमान्वाचःचकार भयदं वपुः ।
सुवर्णभूधराकारं युद्धे शत्रुविनाशकम् ॥ २५ ॥
विश्वस्ता भूत्तदा सीता विजये प्रविलोक्य तत् ।
पुनश्च हनुमान् वीरो लघुरूपसमाश्रितः ॥ २६ ॥
उवाचतामहं शाखामृगो बुद्धिबलोल्पकः ।
परं रामप्रतापेण गरुडं भक्षयेदहिः ॥ २७ ॥
रामभक्तिप्रतापेण तेजसा च समन्विताम् ।
कपिवाणीं समाकर्ण्य तुतोष जनकात्मजा ॥ २८ ॥

---

*राक्षसातिबलास्सर्वे त्वादृशाः कपयः क्वचित्—इति पाठान्तरम् ।

कह कपि हृदय धीर धरु माता । सुमिरु राम सेवक सुखदाता ॥

उर आनहु रघुपति प्रभुताई । सुनि मम वचन तजहु कदराई ॥

दो०—निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति वान कृसानु ।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु ॥१५॥

जौ रघुबीर होति सुधि पाई । करते नहिं विलंव रघुराई ॥

राम वान रवि उए जानकी । तम वरूथ कहँ जातुधान की ॥

अवहिं मातु मैं जाउँ लेवाई । प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ॥

कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ॥

निसिचर मारि तोहि लै जहहिं । तिहुँ पुर नारदादि जस गैहहिं ॥

हैं सुत कपि सव तुम्हहिं समाना । जातुधान अतिभट वलवाना ॥

मोरे हृदय परम संदेहा । सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ॥

कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अति वलबीरा ॥

सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवन सुत लयऊ ॥

दो०—सुनु माता साखामृग, नहिं बल बुद्धि बिसाल ।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हिं, खाइ परम लघु व्याल ॥१६॥

मन संतोष सुनत कपि वानी । भगति प्रताप तेज बल सानी ॥

*अजरश्चामरो रामानुकम्पी गुणवांस्तथा ।
भूय आशीरियंदत्ता सीतया हर्षितःकपिः ॥ २९ ॥

प्रेम्णा मुहुर्मुहुर्नत्वा वद्ध्वाञ्जलिरुवाच ह ।
कृतकृत्योद्य भोमातराशिषा सत्यया तव ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा सत्फलितान्वृक्षान्क्षुधा मामद्य बाधते ।
सीता जगाद हे पुत्र रक्षोभी रक्षिता इमे ॥ ३१ ॥

पुनराह मरुत्पुत्रो रक्षोभ्यों न भयं मम ।
तवादेशो यदि भवेद्भक्षयेयं फलान्यहम् ॥ ३२ ॥

हनुमन्तं समालोक्य बलबुद्धिसमन्वितम् ।
गच्छ श्रीरामचन्द्रस्य पुत्र पादयुगं स्मरन् ॥ ३३ ॥

मधुराणि फलान्यद्धि दिदेश जनकात्मजा ।
सीतापदयुगंनत्वा प्रस्थितो हनुमांस्ततः ॥ ३४ ॥

प्रविश्य वाटिकां भुक्त्वा फलान्युन्मूल्य पादपान् ।
हतवान् रक्षकान् काँश्चित्केचिद्भीताः पलायिताः ॥ ३५ ॥

रावणस्यान्तिके प्रोचुस्त एककपिरागतः ।
नाथ तेन महावीरा राक्षसा युद्धदुर्मदाः ॥ ३६ ॥

निपातिता धरापृष्ठे नाशिताऽशोकवाटिका ।
श्रुत्वेदं रावणो योद्धुं बहुयोधान् समादिशत् ॥ ३७ ॥

तानागतान्विलोक्याशु जगर्ज हनुमान् बली ।
अङ्गैर्विमर्दितान् सर्वान् हत्वा भूमौ न्यपातयत् ॥ ३८ ॥

केचिदर्द्धमृताःशिष्टाश्चुक्रुशू रावणान्तिके ।
श्रुत्वा वृत्तं राक्षसेशो भटानन्यान्समादिशत् ॥ ३९ ॥

कुमारमक्षंसेनान्यं महत्यासेनयावृतम् ।
आगतं वीक्ष्य वृक्षेण हत्वा गर्जन्महत्कपिः ॥ ४० ॥

मर्दिता निहताःकेचित्केचिच्चूर्णीकृता भटाः ।
केचिच्चावेदयामास रावणं कपिविक्रमम् ॥ ४१ ॥

---

*रामानुकम्पी गुणवान् अजरश्चामरो भव—इति पाठान्तरम् ।

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना । होहु तात वल सील निधाना ।।
अजर अमर गुन निधि सुत होहू । करहु वहुत रघुनायक छोहू ।।

करहु कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।।
वार वार नाएसि पद सीसा । बोला वचन जोरि कर कीसा ।।

अव कृत कृत्य भएउँ मैं माता । आसिष तव अमोघ विख्याता ।।
सुनहु मातु मोहिं अतिसय भूखा । लागि देखि सुन्दर फल रूखा ।।
सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी । परम सुभट रजनीचर भारी ।।

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं । जौ तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ।।

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ।।१७।।

चलेउ नाइ सिर पैठेउ वागा । फल खाएसि तरु तोरै लागा ।।

रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ।।

नाथ एक आवा कपि भारी । तेहि असोक वाटिका उजारी ।।

खाएसि फल अरु विटप उपारे । रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे ।।
सुनि रावन पठएउ भट नाना । तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना ।।
सव रजनीचर कपि संहारे । गए पुकारत कछु अधमारे ।।

पुनि पठएउ तेहि अच्छकुमारा । चला संग लै सुभट अपारा ।।

आवत देखि विटप गहि तर्जा । ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ।।

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि ।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट वल भूरि ।।१८।।

लङ्केशः पुत्रमरणं श्रुत्वा क्रोधसमन्वितः ।
योद्धुमाज्ञापयामास मेघनादं महाबलम् ॥ ४२ ॥
समादिदेश तं पुत्र युद्धे मा जहि मर्कटम् ।
बद्ध्वानय यथाजाने कुत्रत्यौसो खलःकपिः ॥ ४३ ॥
स्वबन्धुवधसंजातकोपोऽतुलपराक्रमः ।
इन्द्रजित् प्रस्थितो योद्धुं हनुमान् दारुणं भटम् ॥ ४४ ॥
आयान्तं तं समालोक्य दन्तैर्दन्तानघर्षयत् ।
जगर्जोत्पाटयामास विशालं च महीरुहम् ॥ ४५ ॥
धावित्वा प्रजहाराशु विरथं तं तदाकरोत् ।
सह तेनागतान्योधान् गृहीत्वाङ्कैरमर्दयत् ॥ ४६ ॥
तान्निहत्य ततो भूयो मेघनादमबोधयत् ।
महागजाविव द्वौ तौ युयुधाते परस्परम् ॥ ४७ ॥
प्रहृत्य मुष्ट्या हनुमानारुरोह तरं च तम् ।
क्षणं तेन प्रहारेण रावणिर्मूर्छितोभवत् ॥ ४८ ॥
*उत्थाय पुनरारेभे नानामायामहासुरः ।
†न जेतुंशक्यते तेन मेघनादेन धीमता ॥ ४९ ॥
मायाः कृत्वापि विविधाःप्रभञ्जनसुतो बली ।
ततो ब्रह्मास्त्रसन्धानं चक्रे तेन सुरारिणा ॥ ५० ॥
निरीक्ष्य हनुमान् वीरो मनसीदं व्यचिन्तयत् ।
इदं ब्रह्मास्त्रमोजस्वि सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ५१ ॥
शक्तोप्यहं न चैतस्य महत्वं हन्तुमुत्सहे ।
आहतस्तेन बाणेन न्यपतद्भुवि मारुतिः ॥ ५२ ॥
चूर्णयामास देहेन मेघनादस्य सैनिकान् ।
मूर्च्छितं मारुतिं दृष्ट्वा रावणिर्हर्षसंयुतः ॥ ५३ ॥
नागपाशेन तं बद्ध्वा निनाय पितुरन्तिकम् ।
गिरिजे बन्धनिर्मुक्ता यस्य नामजपान्नराः ॥ ५४ ॥

---

*कृतवान् बहुलां मायां पुनरुत्थाय राक्षसः ।
†तथापि हनुमान् वीरः कथं नापि पराजितः—इति पाठान्तरम् ।

सुनि सुत वध लंकेस रिसाना । पठएसि मेघनाद वलवाना ॥

मारसि जनि सुत वाँधेसु ताही । देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥

चला इन्द्रजित अतुलित जोधा । बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥

कपि देखा दारुन भट आवा । कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥
अति विसाल तरु एक उपारा । विरथ कीन्ह लंकेस कुमारा ॥
रहे महाभट ताके संगा । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ॥

तिन्हहि निपाति ताहि सन वाजा । भिरे जुगल मानहुँ गजराजा ॥

मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई । ताहि एक छन मुरछा आई ॥

उठि वहोरि कीन्हेसि वहु माया । जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥

दो०—ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार ।
जौं न ब्रह्मसर मानौं, महिमा मिटइ अपार ॥१६॥

ब्रह्मवान कपि कहँ तेहि मारा । परतिहु वार कटक संघारा ॥

तेहि देखा कपि मुरछित भयऊ । नागपास वाँधेसि लै गयऊ ॥

जासु नाम जपि सुनहु भवानी । भव बंधन काटहिं नर ज्ञानी ॥

तद्दूतस्य कुतो बन्धः स्वास्यर्थे तेन स्वीकृतः ।
गृहीतं मारुतिंश्रुत्वा मेघनादेन राक्षसाः ॥ ५५ ॥
कौतुकेन दशास्यस्य सभायां समुपागताः ।
*प्रभुत्वं स दशास्यस्य सभायां दृष्टवान् कपिः ॥ ५६ ॥

इति श्रीमद्रामावणेरामचरित्रमानसे महाकाव्येसकलकलिकलुषविध्वंसने
उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

कृताञ्जलिपुटैर्देवैर्यद् भ्रूभङ्गो निरीक्ष्यते ।
प्रतापमीदृशं तस्य दृष्ट्वापि कपिकुञ्जरः ॥ १ ॥
गरुत्मानिव नागेषु न शङ्कामाप मानसे ।
कपीन्दृष्ट्वा दशग्रीव उक्त्वावाच्यंवचोऽहसत् ।
पुनर्हतं सुतं स्मृत्वा हृदये विषसाद ह ॥ ३ ॥
कस्त्वं कीशो ब्रूहि कस्याश्रयेणाकार्षीर्ध्वंसं वाटिकाभूरुहाणाम् ।
रे रे मूढालुञ्च्य शोकंविशङ्को हन्ता वा केनैनसा राक्षसाणाम् ॥ ४ ॥
किन्नाश्रौषीर्मत्प्रतापं श्रवोभ्यां रे मूढ त्वं जीविते किन्निराशः ।
एवंलङ्केशेनपृष्टो हनूमान् हर्षेणेदं निर्भयःप्रत्युवाच ॥ ५ ॥
हे लङ्केश श्रूयतां मद्वचोस्मि दूतश्चाहं राघवेन्द्रस्य तस्य ।
माया यस्य प्राप्य साहाय्यमद्धा ब्रह्माण्डानां संहतीरातनोति ॥ ६ ॥
यत्सामर्थ्याद् ब्रह्मणा सृज्यतेदं विश्वं शश्वद्विष्णुनापाल्यते च ।
रुद्रेणान्ते नाश्यते राक्षसेन्द्र प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥ ७ ॥
शक्त्या यस्य क्ष्मां सशैलां स्वमूर्ध्ना नित्यं शेषःपन्नगेशो बिभर्ति ।
भाराक्रान्तो नैव चावैति भारं प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥ ८ ॥
देवत्राता यःसतां रक्षणार्थं काले काले नेकमूर्त्तीर्दधाति ।
त्वादृग्दुष्टानां तथा शासनार्थं प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥ ९ ॥
भग्ने मानं तेसमानां नृपाणां यश्चाभाङ्क्षीद्रौद्रमस्त्रं पिनाकम् ।
बाणेनैकेनावधीद्वालिनं च प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥ १० ॥
युद्धे चैको यःखरंदूषणं चानायासेनामारयच्च त्रिशीर्षम् ।
सर्वांस्तेषां सैनिकांश्च क्षणेन प्राप्तंदूतंतस्य मां विद्धि नूनम् ॥ ११ ॥

*दशाननस्य प्रभुतां—इति पाठान्तरम् ।

तासु दूत कि बंध तर आवा । प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा ।।
कपि बंधन सुनि निसिचर धाए । कौतुक लागि सभा सब आए ।।
दसमुख सभा दीखि कपि जाई । कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ।।

कर जोरे सुर दिसिप विनीता । भृकुटि विलोकत सकल सभीता ।।

देखि प्रताप न कपि मन संका । जिमि अहिगन महँ गरुड़ असंका ।।

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद ।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि, उपजा हृदय विषाद ।।२०।।

कह लंकेस कवन तैं कीसा । केहि के वल घालेसि वन खीसा ।।

की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोहीं । देखौं अति असंक सठ तोहीं ।।

मारे निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा ।।
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु वल विरचति माया ।।
जाके वल विरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ।।

जा वल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ।।

धरै जो विविध देह सुर त्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावन दाता ।।

हर कोदंड कठिन जेहि भंजा । तोहि समेत नृप दल मद गंजा ।।

खर दूषन त्रिसिरा अरु वाली । वधे सकल अतुलित वलसाली ।।

लब्धैश्वर्य्यो यत्कृपालेशतोसि जित्वा सर्वंस्थावरं जङ्गमं च ।
यस्यानैषीत्प्रेयसीमद्य मूर्ख प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥ १२ ॥
युद्धं कृत्वा चार्जुनेन त्वयाप्तं किष्किन्धायां बालिना चापिलब्धं ।
अन्यच्चापि यत्त्वया संगृहीतं तत्तज्जाने ते प्रभुत्वं समस्तम् ॥ १३ ॥
एतां वाणीं रामदूतस्य तस्य तथ्यां स्वाक्षेपेण युक्तां निशम्य ।
लज्जायुक्तो त्वन्यथा दर्शयन्स्वं रक्षोमध्ये राक्षसेन्द्रो जहास ॥ १४ ॥
स्वामिन् क्षुच्छान्त्यै मया भक्षि तानि प्राणत्राणायैव किंचित्फलानि ।
वृक्षा भग्ना वानरस्यस्वभावादेवंभूयो वायुसुनुर्बभाषे ॥ १५ ॥
प्रेयान्देहो जीवजातस्य सर्वे जानन्तोपि राक्षसाःपापिनो माम् ।
आजघ्नुस्तानप्यहं संजघान त्वत्पुत्रःकिं ब्रूहिबद्ध्वा निनाय ॥ १६ ॥
लज्जा नैतद्वन्धनस्य प्रभो मे कर्त्तुंकार्य्यं स्वप्रभोरागतोहं ।
त्वच्छ्रेयोर्थंसाञ्जलिःप्रार्थयेऽहं शिक्षामेतां वीतरोषःश्रृणोतु ॥ १७ ॥
चराचरं यस्य भयाद्विभेति न तेन वैरं करणीयमित्थम् ।
विचार्य सम्यग्धृदि शिक्षया मे प्रदाय सीतां भज रामचन्द्रम् ॥ १८ ॥
त्राता प्रपन्नस्य दयासमुद्रः प्रभुःखलारी रघुवंशनाथः ।
त्रास्यत्यवश्यं शरणागतं त्वां विस्मृत्य दोषं तव राक्षसेन्द्र ॥ १९ ॥
श्रीरामस्य पादपद्मं निधाय स्वान्ते लङ्काराज्यमेतद्भुनक्तु ।
वंशे पौलस्त्ये शशाङ्कामलेऽस्मिन् माभूद् व्यर्थंलाञ्छनं निश्चरेश ॥२०॥
योषित्सर्वैर्भूषणैर्भूषितापि वस्त्रैर्हीना सा यथा नैव भाति ।
एवं वाणी रामनाम्ना विहीना हित्वा मानं चिन्तयेत्थं हृदि त्वम् ॥ २१ ॥
यासां मध्ये वारिमूलं नदीनां नस्याच्छुष्यत्येव ताःप्राविडन्ते ।
रामाद्वैमुख्येन लब्धापि सम्यक् प्राप्ताप्राप्तैवेह नूनञ्जनानाम् ॥ २२ ॥
रक्षोऽधीश श्रूयतां वच्मि सत्यं रामाद्वैमुख्येऽविता नैव कश्चित् ।
ब्रह्मा विष्णू रुद्र एतेपि सर्वे त्रातुंरामद्रोहिणं त्वां न शक्ताः ॥ २३ ॥
मूलं मोहस्यातिदुःखस्य दाता सर्वोगर्वःसर्वथा त्वं जहीहि ।
पारावारं रावण त्वं भजस्व श्रीरामाख्यं तं रघूणामधीशम् ॥ २४ ॥
भक्तिज्ञानविरागाढ्यां हितां कपिगिरं शिवे ।
अहंयू रावणःश्रुत्वा सहास्यमिदमब्रवीत् ॥ २५ ॥

दो०—जाके बल लवलेस ते, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥२१॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसवाहु सन परी लराई ॥
समर वालि सन करि जस पावा। सुनि कपि वचन विहँसि वहरावा ॥
खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव ते तोरेउँ रूखा ॥

सवके देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी ॥

जिन्ह मोहिं मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ॥
मोहिं न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा ॥
विनती करौं जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि विचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी ॥
जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई ॥
तासों बैर कवहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै ॥

दो०—प्रनतपाल रघुनायक, करुना सिंधु खरारि।
गये सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि ॥२२॥

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम्ह करहू ॥
रिषि पुलस्ति जस विमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होउ कलंका ॥
राम नाम विनु गिरा न सोहा। देखु विचारि त्यागि मद मोहा ॥
वसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी ॥
राम विमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई विनु पाई ॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥
सुनु दसकंठ कहौं पन रोपी। विमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥
संकर सहस बिष्णु अज तोहीं। सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

दो०—मोहमूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपा सिंधु भगवान ॥२३॥

जदपि कही कपि अति हित वानी। भगति बिबेक विरति नय सानी ॥

अहो अहो एष शाखामृगबलीमुखः ।
ज्ञानिनामग्रणीर्भूत्वा गुरुर्मां समुपागतः ॥ २६ ॥
तवासन्नागता मृत्युर्यच्छिक्षयसि मूढ माम् ।
निशम्य हनुमानूचे विपरीतमिदं ध्रुवम् ॥ २७ ॥
वाक्पाटवं कपेर्दृष्ट्वा लज्जितोऽभूद्दशाननः ।
रक्षांस्याज्ञापयामास हन्तुं रामचरं च तम् ॥ २८ ॥
आहस्म हनुमान्भूयस्ते मत्यांरावण भ्रमः ।
श्रुत्वेदं राक्षसास्सर्वेऽधावन्हन्तुंकपीश्वरम् ॥ २९ ॥
तदा सनाथःसचिवैर्विभीषण उपाययौ ।
नत्वातिविनयेनैव रावणं प्रत्यचीकथत् ॥ ३० ॥
तपश्चरो न हन्तव्योऽनयश्चिरविघातनम् ।
अतश्चरेऽस्मिन्नीशान्यः कोऽपि दण्डो विधीयताम् ॥३१॥
श्रुत्वैदं राक्षसास्सर्वे साधुसाध्विति चाब्रुवन् । -
दशास्योप्यादिदेशेत्थम्भग्नाङ्गःप्रेष्यतामयम् ॥ ३२ ॥
पादं केचित्कटं केचिद् भङ्क्तेत्यूचुस्तमोचराः ।
निमज्जय तडागे तं वार्धावित्यपरेऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥
प्रियपुच्छान्कपीन्मत्वा मन्त्रं चक्रुस्ततोऽसुराः ।
तैलाम्बरावृतं पुच्छं दग्धव्यं चास्य निश्चितम् ॥ ३४ ॥
लाङ्गूलेन विहीनोऽयं गमिष्यति महाकपिः ।
आनेष्यति तदावश्यं स्वकीयं स्वामिनं शठः ॥ ३५ ॥
प्रभुत्वं तस्य द्रक्ष्यामोऽनायासेन वयं तदा ।
श्रुत्वेमां सम्मतिं तेषां विहस्य हृदि मारुतिः ॥ ३६ ॥
तर्कयामास जानामि शारदापि विशारदा ।
श्रीरामकार्य्यसंसिद्ध्यै साहाय्यमकरोदिति ॥ ३७ ॥
अवाप्य रावणस्याज्ञामज्ञाःसर्वे निशाचराः ।
तामेव रचनामाशु रचयामासुरञ्जसा ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकलकलिकलुषविध्वंसने
उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

बोला विहँसि महा अभिमानी । मिला हमहिं कपि गुरु वड़ ग्यानी ।।

मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ।।

उलटा होइहि कह हनुमाना । मति भ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ।।
सुनि कपि वचन वहुत खिसिआना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ।।
सुनत निसाचर मारन धाए । सचिवन्ह सहित विभीषन आए ।।

नाइ सीस करि विनय वहूता । नीति विरोध न मारिय दूता ।।

आन दंड कछु करिअ गुसाँई । सवही कहा मंत्र भल भाई ।।

सुनत विहँसि बोला दसकंधर । अंग भंग करि पठइअ बंदर ।।

दो०—कपि के ममता पूँछ पर, सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ।।२४।।

पूँछहीन वानर तहँ जाइहि । तव सठ निज नाथहि लइ आइहि ।।

जिन्ह कै कीन्हिस वहुत वड़ाई । देखौं मैं तिन्ह कै प्रभुताई ।।

वचन सुनत कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद मैं जाना ।।

जातुधान सुनि रावन वचना । लागे रचै मूढ़ सोइ रचना ।।

हनुमानकरोल्लीलामेधयामास बालधिम् ।
यद्वेष्टनान्नाशिष्टं घृततैलाम्बरं पुरि ॥ १ ॥

कौतुकं द्रष्टुमायाता राक्षसाः पुरवासिनः ।
यदा कपिं ताडयित्वा ते हास्यं चक्रिरे बहु ॥ २ ॥

आहत्य पणवान् दीर्घान् कृत्वा करतलध्वनीन् ।
ददहुःकपिपुच्छं ते विभ्राम्य परितः पुरीम् ॥ ३ ॥

पावकं ज्वलितं वीक्ष्य हनुमान्मारुतात्मजः ।
लघुरूपं दधाराशु राक्षसानां भयावहम् ॥ ४ ॥

अट्टालिकायाःशिखरे समारूढस्ततः शिवे ।
उत्प्लुत्य हनुमान्वीरो राक्षस्यस्त्रासमागताः ॥ ५ ॥

वाता एकोनपञ्चाशदीश्वरप्रेरिता ववुः ।
तस्मिन्नवसरे चण्डाः क्षते क्षारा इव प्रिये ॥ ६ ॥

अट्टहासं ततःकृत्वा जगर्ज कपिकुञ्जरः ।
वर्द्धयित्वा वपुःस्वीय माकाशस्पर्शि चाकरोत् ॥ ७ ॥

ततो दशास्यं ब्रूतेस्म मूढबुद्धिः क्व ते गता ।
आत्मश्लाघी त्वमप्येनां ज्वलन्तीं रक्षसां पुरीम् ॥ ८ ॥

मेघास्तवादेशकरास्तानाज्ञापय साम्प्रतम् ।
निर्वापयन्तु ते वृष्ट्या मया दग्धामिमां पुरीम् ॥ ९ ॥

रोषेण यदुवाच त्वं तदैश्वर्य्यं क्व तेऽधुना ।
निशम्येदं कपेर्वाक्यं रावणो हृदयेऽज्वलत् ॥ १० ॥

सुवर्णनिर्मितां लङ्कां ज्वलन्तीं वीक्ष्य राक्षसाः ।
हाहाकारं प्रकुर्वन्ति विवशाःशोकसंयुताः ॥ ११ ॥

विशालापि तनुर्लघ्वी भरद्वाज हनूमतः ।
मन्दिरान्मन्दिरंक्षिप्रमारोहति ततः कपिः ॥ १२ ॥

ज्वालानां विकरालानां कोटिभिःपरितोवृताम् ।
विलोक्य लकां रक्षांसि महतीं दुर्दशामिताः ॥ १३ ॥

हामातर्हापितर्हाहा भ्रातरद्य महापदि ।
त्रायस्व कोपि त्रायस्व प्रलयोऽयं समागतः ॥ १४ ॥

रहा न नगर वसन घृत तेला । वाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि ख़ेला ।।

कौतुक कहँ आए पुरवासी । मारहिं चरन करहिं वहु हाँसी ।।

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी । नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ।।

पावक जरत देखि हनुमंता । भएउ परम लघु रूप तुरंता ।।

निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी । भईं सभीत निसाचर नारी ।।

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास ।।२५।।

देह विसाल परम हरुआई । मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ।।

जरइ नगर भा लोग विहाला । झपट लपट वहु कोटि कराला ।।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा । एहि अवसर को हमहिं उबारा ।।

प्रागेव रावणं सर्वे वयमब्रूम यद्वचः ।
वेषेणवानरःकोपि सुरोयंनैव वानरः ॥ १५ ॥
तदस्माकं वचः सत्यं स्वीचकार न रावणः ।
अवज्ञायाःसतामेतत्फलं प्रत्यक्षतां गतम् ॥ १६ ॥
अनाथस्येव नगरीं लकां दहति वानरः ।
क्रोशन्त्येवं चतुर्दिक्षु रावणाग्रे च राक्षसाः ॥ १७ ॥
अथातःसर्वतो लङ्कां दग्धुं प्रववृते शिखी ।
कृत्वा हाहेति हाहेति पलायाञ्चक्रिरेऽसुराः ॥ १८ ॥
अलब्धशरणास्तत्र यत्र यत्र पलायिताः ।
क्रोशन्त्यस्या विपत्तेःको हाहाऽस्मानुद्धरेदिति ॥ १९ ॥
अट्टालिका मन्दिराणि हैमानि भवनानि च ।
प्राकारस्तम्भ हर्म्याणि दग्धानि निखिलानिच ॥ २० ॥
त्रायेते पितरौ नैव तदापत्तौसुतानपि ।
व्यग्राः स्वस्वपरित्राणे राक्षसा गतचेतनाः ॥ २१ ॥
विवशा वह्निशयने ह्वयन्तिस्म दशाननम् ।
त्रस्तो दशास्यो वदति कालोऽयं कपिरागतः ॥ २२ ॥
अद्भुतं दृश्यते चैतद्वर्णितुं नैव शक्यते ।
वाति वायुःप्रचण्डोऽद्य कस्त्रातुं शक्नुयात्पुरम् ॥ २३ ॥
एवं वदन्तं लङ्केशं प्रगर्ज्योचेऽथ मारुतिः ।
उपदेशं ममाद्यत्वं शठ स्वीकुरु स्वीकुरु ॥ २४ ॥
अधुना सकलान्मेघान्दशग्रीव त्वमाह्वय ।
तैःसमुद्राम्बुनो वृष्टिं स्वलङ्कोपरि कारय ॥ २५ ॥
दहन्नट्टालिकागारानेवंगर्जति मारुतिः ।
भस्मसादभवल्लङ्का हा शिवारावसम्भृता ॥ २६ ॥
दग्धा निमेषमात्रेण लङ्का जाम्बूनदालया ।
ऋते विभीषणागार मत्याश्चर्यमभूदिदम् ॥ २७ ॥
इत्याकर्ण्य भरद्वाज शिवं पप्रच्छ पार्वती ।
अन्तर्यामिन्प्रभो स्वामिन् कृपया मां प्रबोधय ॥ २८ ॥

हम जो कहा यह कपि नहिं होई। वानर रूप धरे सुर कोई॥

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरै नगर अनाथ कर जैसा॥

जारा नगर निमिष एक माहीं। एक विभीषन कर गृह नाहीं॥

ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥

विभीषणो निवसति मध्ये लङ्कां महेश्वर ।
भस्मीभूतं कथं नासीद्विस्मयं हर तद्गृहम् ॥ २९ ॥
उमानियोगमाकर्ण्य प्रत्युवाच महेश्वरः ।
येन दग्धा पुरी लङ्कां दूतो रामस्य स प्रिये ॥ ३० ॥
विभीषणोऽपि श्रीरामभक्त इत्यवधारय ।
हेतुना तेन नोदग्धं विभीषणगृहं शुभम् ॥ ३१ ॥
क्रमव्युत्क्रममार्गेण लङ्कां दग्ध्वा कपीश्वरः ।
पुनर्मध्ये समुद्रं स हनुमान्न्यपतद्बली ॥ ३२ ॥
निर्वाप्य पुच्छमायासं हित्वा कृत्वा वपुर्लघु ।
हस्तौ संयोज्य जानक्याः सम्मुखे चाब्रवीदिदम् ॥ ३३ ॥
मातर्मह्यमपि ज्ञानं दातव्यं किंचिदीप्सितम् ।
यथा श्रीरामचन्द्रेण त्वदर्थं मे समर्पितम् ॥ ३४ ॥
चूडामणिं समुन्मुच्य सीता तस्मै ददौ तदा ।
जग्राह सहहर्षेण तदा तं पवनात्मजः ॥ ३५ ॥
तमुवाच ततः सीता भो वत्स मम वाचिकम् ।
पूर्णकामाय रामाय निवेदय दयालवे ॥ ३६ ॥
प्रणतार्तिहरेत्याख्या मदर्थे संविधाय माम् ।
उद्धरास्मान्महाकष्टात्सीता प्रोक्तवतीति माम् ॥ ३७ ॥
जयन्तस्य पुनर्वृत्तं स्मारय प्राणवल्लभम् ।
श्रीरामबाणशक्तित्वं मदर्थं च प्रकाशय ॥ ३८ ॥
यदि मासान्तरे रामो नागच्छेदिह भोः कपे ।
सत्यं वदामि जीवन्तीमिमां दासीं नचाप्नुयात् ॥ ३९ ॥
ब्रूहि त्वं केन विधिना स्वप्राणान्धारयाम्यहं ।
प्राणाधारस्त्वमपि च गन्तुमिच्छसि सांप्रतम् ॥ ४० ॥
हनुमञ्छीतलं स्वान्तं त्वामालोक्याभवल्लघु ।
दाहकं मे तदेवान्हं पुनः सैव च यामिनी ॥ ४१ ॥
दत्वा धैर्य्यं समाश्वास्य ततः सीतां समारुतिः ।
तत्पादवन्दनं कृत्वा ततो गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये उमामहेश्वरसंवादे
सकलकलिकलुषविध्वंसने सुन्दरकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

दो०—पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनक सुता के आगे, ठाढ़ भएउ कर जोरि॥२६॥

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥

चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवनसुत लयऊ॥

कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा॥

दीनदयाल विरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहिं समुझाएहु॥

मास दिवस महँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥

कहु कपि केहि विधि राखौं प्राना। तुमहू तात कहत अब जाना॥

तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कहँ सोइ दिन सो राती॥

दो०—जनक सुतहिं समुझाइ करि, बहु बिधि धीरज दीन्ह।
चरन कमल सिर नाइ कपि, गवन राम पहँ कीन्ह॥२७॥

घोरं प्रस्थानकाले स जगर्ज हनुमान् कपिः ।
तेन निश्चरनारीणां गर्भस्रावा बभूविरे ॥ १ ॥

पारावारं समुल्लङ्घ्य परपारं समागतः ।
कपीन् किलकिलारावं श्रावयामास मारुतिः ॥ २ ॥

हनुमन्तं समालोक्य हर्षेण कपयोऽखिलाः ।
पुनरात्मशरीराणि सजीवानीव मेनिरे ॥ ३ ॥

मुखप्रसादमालोक्य सर्वे कीशा हनूमतः ।
तं निश्चयेन हृदये कृतकार्यं च मेनिरे ॥ ४ ॥

समाश्लिष्य हनूमन्तं प्रसेदुर्वानरास्त्विमे ।
मीना वैकल्यमापन्ना वारिणा जीविता इव ॥ ५ ॥

वदन्तश्चानुयुञ्जाना इतिहासमिमंस्ततः ।
प्रस्थिता रामचन्द्रस्य समीपे ते मुदान्विताः ॥ ६ ॥

अङ्गदेन सनाथास्ते गत्वा मधुवनान्तरे ।
निर्भयाश्चखदुस्तस्य कामं स्वादुफलानि च ॥ ७ ॥

रोद्धुं प्रवृत्ता ये तत्र वाटिकारक्षकास्तदा ।
मुष्टिभिः प्रहृतास्तेऽपि पलायाञ्चक्रिरे ततः ॥ ८ ॥

गत्वा निवेदयामासुस्ते सुग्रीवं कपीश्वरम् ।
स्वामिन्मधुवनध्वंसो युवराजेन कारितः ॥ ९ ॥

तेषां गिरं समाकर्ण्य सुग्रीवो मुमुदे भृशम् ।
ज्ञात्वेति कपयः प्राप्ताः कृतकार्या न संशयः ॥ १० ॥

यदि सीतां न जानीयुरिमे नूनं प्लवंगमाः ।
कदापि शक्नुयुर्नैव भोक्तुं मधुवने फलम् ॥ ११ ॥

सुग्रीवे चिन्तयत्येव कपियूथमुपागतम् ।
कृतप्रणामं दृष्ट्वा तत् परिरेभे कपीश्वरः ॥ १२ ॥

अथोपप्रच्छ सुग्रीवः कुशलं तान्महाकपीन् ।
ऊचुस्ते कुशलं स्वामिन्भवदङ्घ्रिनिरीक्षणात् ॥ १३ ॥

सिद्धं कार्यमपि स्वामिन् श्रीरामानुग्रहेण च ।
हनूमता कृतं कृत्यं प्राणा नः परिरक्षिताः ॥ १४ ॥

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी ।।

नाँघि सिंधु यहि पारहिं आवा। सवद किलकिला कपिन्ह सुनावा ।।

हर्षे सव विलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तव जाना ।।

मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ।।

मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जिमि वारी ।।

चले हरषि रघुनायक पासा। पूछत कहत नवल इतिहासा ।।

तव मधुवन भीतर सव आए। अंगद संमत मधु फल खाए ।।

रखवारे जव वरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे ।।

दो०—जाइ पुकारे ते सव, बन उजार जुवराज।
सुनि सुग्रीव हरष-कपि, करि आए प्रभु काज ।।२८।।

जौ न होति सीता सुधि पाई। मधुवन के फल सकहिं कि खाई ।।

एहि विधि मन विचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा ।।

आइ सबन्हि नावा पद सीसा। मिलेउ सवन्हि अति प्रीति कपीसा ।।

पूछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपा भा काज विसेखी ।।

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना ।।

एवं निशम्य सुग्रीवः परिरेभे पुनश्च तम् ।
*वायुसूनुस्ततो रामान्तिकं यातुं प्रचक्रमे ॥ १५ ॥

रामो विलोकयामास कृतकर्यान्कपीन् यदा ।
विशेषेण तदैवासीत्स्वान्ते हर्षसमन्वितः ॥ १६ ॥

स्फाटिके फलके यत्र समासीनौ रघूद्वहौ ।
निपेतुः पादयोस्तत्र गत्वा सर्वे बलीमुखाः ॥ १७ ॥

आश्लिष्य रामस्तान्प्रीत्या पप्रच्छ कुशलं तदा ।
त ऊचुः कुशलंचाद्य भवत्पादावलोकनात् ॥ १८ ॥

जाम्बवान् व्याजहारैवं श्रूयतां रघुनन्दन ।
निरन्तरं स कुशलो यस्मिंस्त्वमनुकम्पसे ॥ १९ ॥

ख्यातः स एव लोकेषु विनीतो गुणसागरः ।
तस्योपरि प्रसीदन्ति सर्वे सुरनरर्षयः ॥ २० ॥

अद्य कार्यं सुसम्पन्नं कृपयैव तव प्रभो ।
एतस्य जन्मनश्चाद्य साफल्यमपि संवृतम् ॥ २१ ॥

भोः प्रभो हनुमत्कर्म वक्तुं शेषोऽपि न क्षमः ।
चरित्रं वायुपुत्रस्य कथमस्मद्विधो जनः ॥ २२ ॥

एवं जाम्बवता प्रोक्तं श्रुत्वा रामो दयानिधिः ।
हनुमन्तं पुनारामो परिरभ्य हृदाऽब्रवीत् ॥ २३ ॥

ब्रूहि तात महाभाग कथं जनकनन्दिनी ।
विधत्ते रक्षसां मध्ये प्राणत्राणं मम प्रिया ॥ २४ ॥

हनुमान्प्रत्युवाचेति श्रीरामं शोकसंयुतः ।
निर्दिशामि दशास्यारे श्रूयतां जानकीदशा ॥ २५ ॥

प्रागुत्तीर्य्यं पुरीं दग्ध्वा वारिधिं तीर्णवानहम् ।
तथापि नाथ सीताक्ष्णोरुत्तर्तुं वारि नाशकम् ॥ २६ ॥

यामिको भवतां नाम कपाटं ध्यानमेव च ।
स्वपदालोकनं यन्त्रं कृत्वात्मासून् रुणद्धि सा ॥ २७ ॥

---

*रामान्तिकं तु सुग्रीवस्ततो यातुं प्रचक्रमे—इति पाठान्तरम् ।

सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहँ चलेऊ ॥

राम कपिन्ह जव आवत देखा। किए काज मन हरष विसेखा ॥

फटिक सिला बैठे दोउ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई ॥

दो०—प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुना पुंज।
पूछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद कंज ॥२९॥

जामवन्त कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥
सोइ विजई बिनई गुन सागर। तासु सुजस त्रैलोक उजागर ॥
प्रभु की कृपा भएउ सव काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू ॥
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहु मुख न जाइ सो वरनी ॥

पवन तनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहिं सुनाए ॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हिय लाए ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की ॥

दो०—नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिं प्रान केहि बाट ॥३०॥

अयं चूडामणिर्दत्तो गन्तुकामाय मे तथा ।
जग्राह तं स्वयं रामः स्थापयामास वक्षसि ॥ २८ ॥

मारुतिः पुनराहस्तं प्रयाणाभिमुखे मयि ।
साश्रुसाञ्जलिजानक्या शोकेनेदं निवेदितम् ॥ २९ ॥

मम प्रतिनिधिर्भूत्वा सानुजस्य दयानिधेः ।
श्रीरामस्य पदे स्पृष्ट्वा त्वं निवेदय मारुते ॥ ३० ॥

दीनबन्धो दयासिन्धो प्रणतार्तिविनाशक ।
कर्मणा मनसा वाचाऽनुरक्तां मां किमत्यजः ॥ ३१ ॥

अवश्यमेको दोषोऽस्ति मम जानामि हे प्रभो ।
भवद्वियोगमासाद्य यन्मे प्राणा न निर्गताः ॥ ३२ ॥

तत्रापराधो मे नास्ति नेत्रयोरनयोश्च सः ।
सावधानतया स्वामिस्तद्वृत्तं श्रूयतामिदम् ॥ ३३ ॥

विरहाग्निस्तनुं तूलं श्वासमारुतिसारथिः ।
दग्धुं प्रवर्त्तते यावत्तावत्त्वद्दर्शनोत्सुके ॥ ३४ ॥

चक्षुषी स्रवतो वारि स्वार्थसाधनतत्परे ।
येन दग्धुं वपुर्नैव शक्नुयाद्विरहानलः ॥ ३५ ॥

श्रीरामजानकीजाने करुणावरुणालय ।
सीताविपत्तिर्महती वरमव्याहृता किल ॥ ३६ ॥

प्रयाणसमये भूयो मामुवाचेति सा सती ।
स्मारय त्वं जयन्तस्य वृत्तं रामस्य मारुते ॥ ३७ ॥

निमेषमात्रमद्यास्याः कल्पतुल्यो निवर्तते ।
तूर्णं यात्वानयैनां त्वं जित्वा हत्वा खलान् बलान् ॥ ३८ ॥

निशम्य जानकीदुःखं रामस्य सुखसद्मनः ।
नलिने इव सन्नेत्रे जलपूर्णे बभूवतुः ॥ ३९ ॥

पुनर्विचारयामास मनोवाक्कायकर्मभिः ।
मद्‌गतिर्यासदासाध्वी स्वप्नेऽपि विपदीदृशी ॥ ४० ॥

उवाच हनुमान्भूयो पदार्चा न तु पूजनम् ।
सम्पद्येत तदास्वामिन् विपत्तिर्नोऽविपद्विपत् ॥ ४१ ॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही । रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही ॥

नाथ जुगल लोचन भरि वारी । वचन कहे कछु जनककुमारी ॥

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना । दीनवन्धु प्रनतारति हरना ॥

मन क्रम वचन चरन अनुरागी । केहि अपराध नाथ हौं त्यागी ॥

अवगुन एक मोर मैं माना । बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ॥

नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा । निसरत प्रान करहिं हठि वाधा ॥

बिरह अगिनि तनु तूल समीरा । स्वाँस जरइ छन माँहि सरीरा ॥

नयन स्रवहिं जल निज हित लागी । जरै न पाव देह विरहागी ॥

सीता कै अति बिपति विसाला । विनहिं कहे भलि दीनदयाला ॥

दो०—निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलप सम बीति ।
बेगि चलिय प्रभु आनिय, भुज बल खल दल जीति ॥३१॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना । भरि आए जल राजिव नयना ॥

वचन काय मन मम गति जाही । सपनेहु बूझिय विपति कि ताही ॥

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजन न होई ॥

वैरिणं रावणं जित्वा नीयतां जानकी प्रभो ।
नूनं भवत्प्रतापाग्रे गणना कास्ति रक्षसाम् ॥ ४२ ॥
उवाच रामो हनुमन् न त्वादृगुपकारकः ।
शरीरी दृश्यते कोऽपि नरामरमुनीष्वपि ॥ ४३ ॥
कपे प्रत्युपकारं ते कथं कुर्यामहं तव ।
त्वत्सम्मुखे तु मुखं चाद्य भवितुं मे न शक्नुयात् ॥ ४४ ॥
विचार्यं मनसि ज्ञातं हनुमञ्छृणु सांप्रतम् ।
अनृणो न कदाप्यस्मि त्वत्तोऽस्मीति विनिश्चितम् ॥ ४५ ॥
पुनःपुनर्वदन्नेवं कपिं पश्यन् रघूद्वहः ।
सनीरनीरजाक्षः सन् रोमाञ्चिततनूरभूत् ॥ ४६ ॥
हनुमच्छिरसि न्यस्तं रामेण करपङ्कजम् ।
संस्मृत्य तां दशामीशो संज्ञाहीनोऽभवत्तदा ॥ ४७ ॥
भूतः ससंज्ञोऽथ शिवः प्रारेभे कथितुं कथाम् ।
उमे रामः समुत्थाप्य परिरेभे हनूमता ॥ ४८ ॥
उपवेश्यान्तिके प्राक्षीत्कपे रक्षःप्ररक्षिताम् ।
अधाक्षीः केन विधिना लंकां दुर्गदुरासदाम् ॥ ४९ ॥
प्रसन्नं राघवं मत्वाऽगर्वो मारुतिरब्रवीत् ।
शाखाचङ्क्रमणं शाखामृगाणां कर्म चेरितम् ॥ ५० ॥
समुद्रोल्लङ्घनं लङ्कादाहो रक्षोविनाशनम् ।
वनध्वंसश्च भवतां प्रतापो नास्ति मामकः ॥ ५१ ॥
दुष्करं तस्य नैवास्ति यस्मिंस्त्वमनुकम्पसे ।
वडवाग्निं दहेत्तूलः प्रतापात्तव भोः प्रभो ॥ ५२ ॥
अतिशर्मप्रदा भक्तिर्या तवास्त्यनपायिनी ।
श्रीरामचन्द्र तामेव कृपया त्वं प्रदेहि मे ॥ ५३ ॥
अतीव सरलां वाणीं रामः श्रुत्वा हनूमतः ।
अपर्णे एवमेवास्तु रामः प्रोवाच सादरम् ॥ ५४ ॥
ज्ञातरामस्वभावस्य जनस्य भजनादृते ।
असारे देवि संसारे वस्तु भाति न किंचन ॥ ५५ ॥

केतिक वात प्रभु जातुधान की। रिपुहिं जीति आनिबी जानकी ।।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी ।।

प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि विचार मन माहीं ।।

पुनि पुनि कपिहिं चितव सुर त्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता ।।

दो०—सुनि प्रभु बचन बिलोकि-मुख, गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत ।।३२।।

वार वार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठव न भावा ।।
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ।।
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुन्दर ।।
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा ।।
कहु कपि रावन पालित लंका। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बंका ।।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला वचन विगत अभिमाना ।।
साखामृग कै वड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई ।।
नाँघि सिंधु हाटक पुर जारा। निसिचर गन वधि विपिन उजारा ।।
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ।।

दो०—ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जा पर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रभाव बड़वानलहि, जारि सकै खलु तूल ।।३३।।

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी ।।

सुनि प्रभु परम सरल कपि वानी। एवमस्तु तव कहेउ भवानी ।।

उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना ।।

य एनं रामहनुमत्संवादं हृदि धारयेत् ।
श्रीरामचरणाम्भोजदृढभक्तिं स चाप्नुयात् ॥ ५६ ॥
निशम्य रामवचनं सर्वे कीशगणास्तदा ।
ऊचुर्जयजयानन्दकन्दराम कृपानिधे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकलकलिकलुषविध्वंसने उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

समाहूय ततो रामः सुग्रीवं वानराधिपम् ।
कथयामास भो मित्र वचनं मम श्रूयताम् ॥ १ ॥
अविलम्बेन लङ्कायां गन्तुं सज्जीभवाधुना ।
किं कारणं विलम्बस्य कपीनित्थं समादिश ॥ २ ॥
दृष्ट्वेदं कौतुकं सर्वे वृष्टीः सुमनसां दिवः ।
कृत्वा सुमनसो हर्षात्स्वंस्वंस्थानं प्रतस्थिरे ॥ ३ ॥
नानावर्णाऽतुलबलाः कपिभालुगणास्तदा ।
सुग्रीवेण समाहूताः सममेव समागताः ॥ ४ ॥
प्रणम्य रामपादाब्जं ते गर्जन्ति महाबलाः ।
दृष्टा कृपाकटाक्षेण श्रीरामेण च ते तदा ॥ ५ ॥
श्रीरामकरुणादृष्ट्या बलवीर्य्यसमन्विताः ।
अभूवन्नृक्षकपयः सपक्षाः पर्वता इव ॥ ६ ॥
ततः प्रतस्थे श्रीरामो दशाननजिगीषया ।
शकुनानि तदाभूवञ्छुभानि सुखदानि च ॥ ७ ॥
प्रयाणे रामचन्द्रस्य शकुनान्यभवन् प्रिये ।
नीतिः शाश्वतिका ह्येषा मङ्गलायतनो हि सः ॥ ८ ॥
अदृष्टमश्रुतं यानं श्रीरामस्य महात्मनः ।
स्ववामाङ्गपरिस्पन्दैः सीता ज्ञातवती सती ॥ ९ ॥
यदङ्गस्फुरणं चासीज्जानक्याः शुभसूचकम् ।
रावणस्य तदैवासीत्तदेवाशुभसूचकम् ॥ १० ॥
अथोच्चचाल रामस्य दुष्पारं प्रबलं बलम् ।
गर्जन्ति वानरा ऋक्षा यस्मिन्नखनगायुधाः ॥ ११ ॥

यह संवाद जासु उर आवा । रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥

सुनि प्रभु वचन कहहिं कपिबृन्दा । जय जय जय कृपाल सुखकन्दा ॥

तव रघुपति कपि पतिहि बोलावा । कहा चलै कर करहु वनावा ॥

अव विलंव केहि कारन कीजै । तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजै ॥

कौतुक देखि सुमन वहु वरषी । नभ तें भवन चले सुर हरषी ॥

दो०—कपिपति बेगि बुलाए, आए जूथप जूथ ।
नाना वरन अतुल बल, वानर भालु बरूथ ॥३४॥

प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा । गरजहिं भालु महावल कीसा ॥
देखी राम सकल कपि सैना । चितइ कृपा करि राजिव नैना ॥
राम कृपा वल पाइ कपिंदा । भये पच्छ जुत मनहुँ गिरिन्दा ॥

हरषि राम तव कीन्ह पयाना । सगुन भए सुन्दर सुभ नाना ॥

जासु सकल मंगलमय कीती । तासु पयान सगुन यह नीती ॥

प्रभु पयान जाना बैदेही । फरकि वाम अँग जनु कहि देही ॥

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई । असगुन भएउ रावनहि सोई ॥

चला कटक को वरनै पारा । गर्जहिं वानर भालु अपारा ॥

भुवि धावन्ति डीयन्ते ते च स्वेच्छाविचारिणः ।
तन्नादैः कम्पते भूमिश्चोत्कुर्वन्ति च दिग्गजाः ॥ १२ ॥

क्षोभं च लोलतामापुः सागरा गिरयस्तथा ।
जहृषुश्चामरार्केन्दुर्मुनिकिम्पुरुषादयः ॥ १३ ॥

दन्तान्कटकटायन्ते मर्कटा विकटा भटाः ।
धावन्ति कोटिशो राम विजयस्वेति व्याहरन् ॥ १४ ॥

मुह्यन्मुहुर्मुहुः शेषः सोढुं तद्भारमक्षमः ।
कौर्मं पृष्ठं स्वदशनैर्दशन्नेवं बभौ तदा ॥ १५ ॥

प्रयाणकालिकीं नूनं श्रीरामस्य यशो बलम् ।
कूर्मपृष्ठे विलिखति फणीशो रुचिरां चिरम् ॥ १६ ॥

एवमब्धि तटं राम आससाद दयानिधिः ।
यत्रतत्रफलान्याद्रुः सैनिका ऋक्षवानराः ॥ १७ ॥

यत आरभ्य हनुमाल्लंकां दग्ध्वा समागतः ।
ततः प्रभृति रक्षांसि वसन्तिस्म ससाध्वसम् ॥ १८ ॥

रक्षः कुलस्य न क्षेममिति सर्वे व्यचिन्तयन् ।
यस्याकथ्यबलो दूतः क्वहितं नस्तदागमे ॥ १९ ॥

चरेभ्यःपौरगाः श्रुत्वा मन्दोदर्यतिव्याकुला ।
उवाच स्वपतिं नत्वा साञ्जलिर्नीतियुग्वचः ॥ २० ॥

कान्तावधार्य मे वाचं विरोधं त्यज विष्णुना ।
स्मृत्वा यच्चरकर्माण्यद्य स्रवद्गर्भाः पुरस्त्रियः ॥ २१ ॥

यदीच्छसि हितं कान्त समाहूय स्वमन्त्रिणः ।
श्रीरामसविधेऽद्यैव सीतां प्रेषय माचिरम् ॥ २२ ॥

इदं चरित्रं परमं पवित्रं सुखास्पदं संशयशोकशोषम् ।
महेशगीतं कलिकल्मषघ्नं शुद्धाशये स्थापय हे भुशुण्डे ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रस्य गुणान्सुमङ्गलान् गायन्ति शृण्वन्ति च ये गतस्पृहाः ।
तरन्ति क्षिप्रं जलयानमन्तरा भवाम्बुधिं हे गिरिराजनन्दिनि ॥२४॥

नख आयुध गिरि पादप धारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरि नाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

छं०—चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खर भरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किन्नर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥
सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥

दो०—यहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर॥३५॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका॥

निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी॥
रहसि जोरि कर पति पद लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू॥
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥

त्वदीयान्वयकञ्जानां विपिनस्यातिदुःखदा ।
सीतानिशीथिनीं शीतामायातां तु परित्यज ।। २५ ।।
श्रूयतां मद्वचः स्वामिंस्तव सीतार्पणं विना ।
ईशते न हितं कर्त्तुं ब्रह्मरुद्रादयोऽमराः ।। २६ ।।
रक्षोभेककुलं यावत्स्वामिन् रामशराहयः ।
ग्रसेयुर्नैव तावत्त्वं चर यत्नं हठं त्यज ।। २७ ।।
श्रवणाभ्यां समाकर्ण्य मन्दोदर्युपदेशनम् ।
जगत्यहंयुर्विख्यातो जहास रावणः शठः ।। २८ ।।
नूनं स्त्रीणां मनो भीरु यन्मङ्गल उपस्थिते ।
कान्ते स्वान्तेऽद्य कार्पण्यं ते जातमिति चाब्रवीत् ।। २९ ।।
वनेचराणां यूथं चेदागच्छेदद्य भामिनि ।
क्षुत्क्षमाराक्षसा जग्ध्वा जीवेयुर्नात्र संशयः ।। ३० ।।
एजन्ते यद्भयाल्लोकपाला त्रस्यत्तदङ्गना ।
हास्यमेतदितिप्रोच्य परिरेभे विहस्य ताम् ।। ३१ ।।
अतिस्नेहं दर्शयित्वा संसदं प्रस्थितः पुनः ।
मन्दोदरीत्ववागच्छत् वामतामगमद्विधिः ।। ३२ ।।
सिन्धुपारगतां सेनां सभासंस्थो दशाननः ।
श्रुत्वा रामस्य पप्रच्छ मन्त्रं स्वान्मन्त्रिणस्ततः ।। ३३ ।।
ते सर्वेऽकथयंस्तूष्णीं स्थीयतां राक्षसेश्वर ।
सुरासुरविजेताऽसि क एते नरवानराः ।। ३४ ।।
मन्त्री वैद्यो गुरुश्चैते भवेयुः प्रियवादिनः ।
राष्ट्रविग्रहधर्माणामाशुनाशस्तदा भवेत् ।। ३५ ।।
रावणस्य सभामध्ये दृश्यते तादृशी दशा ।
वदन्ति सभयाः सभ्यास्तन्मनोनुगुणान् गुणान् ।। ३६ ।।

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकलकलिकलुषविध्वंसने
उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे अष्टमः सर्गः ।। ८ ।।

अथ तस्मिन्नवसरे लघुभ्राता विभीषणः ।
तत्रागत्य नमश्चक्रे ज्यायोभ्रातुः पदे मुदा ।। १ ।।

तव कुल कमल विपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ॥

सुनहु नाथ सीता विनु दीन्हें । हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ॥

दो०—राम बान अहिगन सरिस, निकर निसाचर भेक ।
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतन करहु तजि टेक ॥३६॥

श्रवन सुनी सठ ताकरि बानी । विहँसा जगत बिदित अभिमानी ॥

सभय सुभाउ नारि कर साँचा । मंगल महँ भय मन अति काँचा ॥

जौ आवै मर्कट कटकाई । जिअहिं बिचारे निसिचर खाई ॥

कंपहिं लोकप जाकी त्रासा । तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥

अस कहि विहँसि ताहि उर लाई । चलेउ सभा ममता अधिकाई ॥
मन्दोदरी हृदय कर चिंता । भयउ कंत पर विधि विपरीता ॥
बैठेउ सभा खबरि असि पाई । सिंधु पार सेना सव आई ॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू । ते सव हँसे मष्ट करि रहहू ॥
जितेहु सुरासुर तव स्रम नाहीं । नर वानर केहि लेखे माहीं ॥

दो०—सचिव बैद गुरु तीनि जौ, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिही नास ॥३७॥

सोइ रावन कहँ वनी सहाई । अस्तुति करहिं सुनाइ-सुनाई ॥

अवसर जानि विभीषन आवा । भ्राता चरन सीस तेहि नावा ॥

उपविश्यासने स्वीये तदादिष्टोऽब्रवीदिदम् ।
यदि पृच्छसि वक्ष्यामि हितं तात यथामति ॥ २ ॥
सुमतिं सुगतिं कीर्ति कल्याणं कानि चेच्छता ।
चतुर्थीन्दुरिवादृश्यं परकान्ताननं प्रभो ॥ ३ ॥
वदन्ति गुणिनां दक्षा लोभोऽल्पोपि न शोभनः ।
भुवनाधिपतिश्चापि भूतद्रोहाद्विनश्यति ॥ ४ ॥
कामः क्रोधो मदो लोभ एते निरयका यथा ।
भज रामं हितधिया विशेषवचनं श्रृणु ॥ ५ ॥
रामो न नरभूपालः कालकालस्त्रिलोकपः ।
ब्रह्मानादिरनन्तोऽयं व्यापको भगवानजः ॥ ६ ॥
निरामयो निराकारः कारणं सदसत्परः ।
खलानां भञ्जकः शश्वत्सज्जनानां च रञ्जकः ॥ ७ ॥
वेदधर्मप्रतोदेव भूभूसुरहिते हितः ।
दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्मानुषीं तनुमाश्रितः ॥ ८ ॥
तेन वैरं न कर्त्तव्यं श्रृणु भ्रातरिदं वचः ।
प्रणतार्तिहरं रामं वन्दस्व शिरसाऽधुना ॥ ९ ॥
यो न विश्वद्रुहमपि जहाति शरणागतम् ।
रामो निर्हेतुकस्नेहस्तस्मै वितर जानकीम् ॥ १० ॥
दैहिकं दैविकं भ्रातस्तापं भौतिकमाशु च ।
विनाशयति यन्नाम स एवाविरभूदयम् ॥ ११ ॥
पादौ स्पृष्ट्वा दशग्रीव करोमि विनयं मुहुः ।
मानमोहमदान् हित्वा कोशलाधिपतिं भज ॥ १२ ॥
शिष्यद्वारा पुलस्त्येन प्रेषितं वाचिक त्विदम् ।
स्वामिन्नवसरं लब्ध्वा मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ १३ ॥
विभीषणवचः श्रुत्वा सचिवो माल्यवान्मुदा ।
रावणस्य हितं मत्वा प्रोवाच वचनं तदा ॥ १४ ॥
विभीषणो हितं वक्ति दशास्य नयभूषणः ।
नयं तथ्यं च पथ्यं च नूनमेवंविधीयताम् ॥ १५ ॥

पुनि सिर नाइ बैठ निज आसन । बोला वचन पाइ अनुसासन ॥
जौ कृपाल पूछेहु मोहिं वाता । मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥
जो आपन चाहइ कल्याना । सुजस सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजौ चौथि के चंद की नाईं ॥
चौदह भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई ॥

गुन सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहै न कोऊ ॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु भजहिं जेहि संत ॥३८॥

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेश्वर कालहु कर काला ।
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता । व्यापक अजित अनादि अनंता ॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपासिंधु मानुष तनु धारी ॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता । बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥
ताहि वयर तजि नाइय माथा । प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥

देहु नाथ प्रभु कहँ बैदेही । भजहु राम विनु हेतु सनेही ॥
सरन गए प्रभु ताहु न त्यागा । विस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन । सोइ प्रभु प्रगट समुझु जिय रावन ॥

दो०—बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस ।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस ॥३९ (क) ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यह बात ।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसर तात ॥३९ (ख) ॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना । तासु वचन सुनि अति सुख माना ॥

तात अनुज तव नीति विभूषन । सो उर धरहु जो कहत विभीषन ॥

निशम्यैतद्दशग्रीव ऊचे कश्चिदिमौ शठौ ।
सद्यो निस्सारयतु तौ स्वामि विश्वासघातिनौ ॥ १६ ॥
समाकर्ण्य वचश्चैतन्माल्यवान् स्वगृहं ययौ ।
विभीषणः पुनर्बद्धाञ्जलिरूचे दशाननम् ॥ १७ ॥
अन्तर्वसति सर्वेषां सुमतिः कुमतिस्तथा ।
सम्पत्तिर्यत्र सुमतिर्विपत्तिःकुमतिर्यतः ॥ १८ ॥
एवं वदन्ति निखिलाः पुराणनिगमागमाः ।
दशाननतवस्वान्ते विपरीता मतिः किल ॥ १९ ॥
मित्रं शत्रुर्यया वेत्सि हितंचाहितमेव च ।
रक्षसां कालरात्र्यान्ते सीतायां प्रीतिरुत्तमा ॥ २० ॥
पादौ गृहीत्वा याचेहं रक्ष मे लालनं परम् ।
जानकीं देहि रामस्य भवेदेवं हितं तव ॥ २१ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां विदुषां सम्मतां गिरम् ।
विभीषणेन कथितां नीतिपूर्णां सविस्तरम् ॥ २२ ॥
तां निशम्य दशग्रीवः क्रोधेनाहस्म रे खल ।
विधिना विहितो मृत्युः सविधे ते समागतः ॥ २३ ॥
जीवयामि सदाहं त्वां ततस्त्वं शठ जीवसि ।
तथापि मम विद्वेष्टुः पक्षपातस्तव प्रियः ॥ २४ ॥
ब्रूहि रे खल कश्चास्ति बलवानीदृशो भटः ।
अस्माकं यो भुजबलैरजय्यो जगतीतले ॥ २५ ॥
उषित्वा नगरेऽस्माकं तापसे प्रीतिकृच्छठ ।
तमेव मिल गत्वा त्वं नीतिञ्चापि तमादिश ॥ २६ ॥
एवमुक्त्वा रावणस्तं प्रजहार पदा क्रुधा ।
विभीषणस्तु पस्पर्श पदं नत्वा मुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥
अपर्णे मह्यते मह्यां महत्त्वं महतामिदम् ।
अपकारिण्यपि सदोपकारेणप्रवर्तनम्* ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकलकलिकलुषविध्वंसने
उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

*'कुर्वन्ति प्रत्युपकारप्रवर्त्तनम्' या 'हिताचार प्रवर्तनम्'—इति पाठान्तरम् ।

रिपु उतकर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ ॥

माल्यवंत गृह गयउ वहोरी। कहइ विभीषन पुनि कर जोरी ॥

सुमति कुमति सवके उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

तव उर कुमति वसी विपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥

काल राति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥

दो०—तात चरन गहि माँगौं, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहँ, अहित न होइ तुम्हार ॥४०॥

बुध पुरान श्रुति संमत वानी। कही विभीषन नीति वखानी ॥

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अव आई ॥

जियसि सदा सठ मोर जियावा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥

कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजवल जाहि जिता मैं नाहीं ॥

मम पुर वसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती ॥

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद वारहिं वारा ॥

उमा संत कइ इहइ वड़ाई। मंद करत जो करै भलाई ॥

अथो विभीषणः प्राह बाढं मां त्वमताडयः ।
पितृतुल्योऽसि किन्तु त्वद्धितं श्रीरामसेवनात् ॥ १ ॥

ततः स सचिवान्नीत्वा प्रस्थितो वियदध्वना ।
सर्वान् संश्रावयन्नूचे वचनं रावणं प्रति ॥ २ ॥

श्रीरामः सत्यसंकल्पः सभ्याः कालवशास्तव ।
तमहं शरणं यामि मम दोषो न दीयताम् ॥ ३ ॥

एवमाभाष्य लङ्केशं यदागच्छद्विभीषणः ।
आयुर्हीनस्तदैवासीद्रावणो राक्षसाधिपः ॥ ४ ॥

साधोरवज्ञया नूनं सर्वेषां सर्वमङ्गले ।
करस्थसर्वकल्याणहानिर्भवति सत्वरम् ॥ ५ ॥

विभीषणं यदैवासौ सन्तं तत्याज रावणः ।
दुर्भाग्येन तदैवासीद्रहितः सर्ववैभवैः ॥ ६ ॥

मनोरथान्बहून्कुर्वन् स्वीयस्वान्ते विभीषणः ।
हर्षेण मार्गे रामस्य पार्श्वे गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ७ ॥

अरुणाम्बुजसंकाशौ सेवकानां सुखप्रदौ ।
अहल्योद्धारनिपुणौ दण्डकावनचारिणौ ॥ ८ ॥

सीताहृदयगौ छद्मकुरङ्गस्यानुधाविनौ ।
द्रक्ष्यामि दिष्ट्या यत्पद्मौ हरमानससरोरुहौ ॥ ९ ॥

भरतो मनसा भेजे पादयोः पादुके ययोः ।
आभ्यां द्रक्ष्यामि चक्षुर्भ्यां तावेवाद्य भवापहौ ॥ १० ॥

प्रीत्या विचारयन्नेवं सिन्धुपारे समागतः ।
कीशा दृष्ट्वा तमायान्तं रिपुदूतं च मेनिरे ॥ ११ ॥

ते तं निरुध्य सुग्रीवं तस्य वृत्तं न्यवेदयन् ।
सुग्रीवोऽप्याह श्रीरामं विभीषणकृतागमम् ॥ १२ ॥

प्रत्युवाच ततो रामः सखे किं, परिपृच्छसि ।
मिलितुं चेदिहायाति मा रुन्ध्या नय सत्वरम् ॥ १३ ॥

विभीषण की कहन

तुम्ह पितु सरिस भलेहि मोहि मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥

दो०—राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि॥४१॥

अस कहि चला विभीषन जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥

साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी॥

रावन जबहिं विभीषन त्यागा। भयउ विभव बिनु तबहि अभागा॥

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥

देखिहौं जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई॥

दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहौं, इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥४२॥

यहि विधि करत सप्रेम विचारा। आयउ सपदि सिंधु यहि पारा॥
कपिन्ह विभीषन आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत विसेषा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥
कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहै कपीस सुनहु नरनाहा॥

सुग्रीवः पुनराहस्म कामरूपा निशाचराः ।
नैतेषां ज्ञायते माया न जानेऽयं किमागतः ॥ १४ ॥
रहस्यं वेत्तुमस्माकमेष नूनमिहागतः ।
मह्यं तु रोचते तस्मान्निग्रहं स्थाप्यतामयम् ॥ १५ ॥
प्रत्यवादीत्ततो रामः सम्यङ्नीतिरियं सखे ।
शरणागतभीतिघ्नी प्रतिज्ञा किन्तु मामकी ॥ १६ ॥
रामोक्तं हनुमाञ्छ्रुत्वा शरणागतपालकम् ।
भगवन्तं प्रभुं स्वन्तं मत्वा हर्षमुपागतः ॥ १७ ॥
पुनारामोब्रवीदेवं तेषां नो दर्शनं हितम् ।
मत्वाऽहितं स्वं ये नीचास्त्यजन्ति शरणागतम् ॥ १८ ॥
कोटिविप्रघ्नपापोऽपि न हेयः शरणागतः ।
जनिकोटिकृताघोऽपि प्रपन्नो मां विशुद्ध्यति ॥ १९ ॥
स्वभावेनैव पापेभ्यो भजनं मे न रोचते ।
यः स्याद्दुराशयो नैव मां कदापि प्रपद्यते ॥ २० ॥
स्वच्छाशयो मां लभते छद्म मह्यं न रोचते ।
छिद्रान्वेषी दम्भरतो मां द्रष्टुमपि न क्षमः ॥ २१ ॥
ज्ञातुं रहस्यं प्रहितो मे दशास्येन चेदसौ ।
तथापि दृश्यते नैव कापि हानिः कपीश्वर ॥ २२ ॥
जगत्यां सन्ति यावन्ति रक्षांसि बलवन्त्यति ।
हन्तुं तानि समर्थोऽस्ति लक्ष्मणाख्यो ममानुजः ॥ २३ ॥
शरणं मां समायातो यदि भीतो विभीषणः ।
तर्हि प्राणानिव त्रास्ये सर्वथा तं समानय ॥ २४ ॥
तमानेतुं जय स्वामिन् रामरामेतिभाषिणः ।
हनुमानङ्गदोऽन्येपि कपयः प्रस्थिता मुदा ॥ २५ ॥
सादरं वानराः सर्वे स्वाग्रे कृत्वा विभीषणम् ।
कारुण्यधामश्रीरामस्यान्तिके समुपानयन् ॥ २६ ॥
नयनानन्ददातारौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
दूराद्विभीषणोऽपश्यत्करुणावरुणालयौ ॥ २७ ॥

जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया ॥

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहिं अस भावा ॥

सखा नीति तुम्ह नीकि विचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥

सुनि प्रभु वचन हरष हनुमाना। सरनागत वच्छल भगवाना ॥

दो०—सरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥४३॥

कोटि विप्र वध लागहि जाहू। आये सरन तजौं नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहिं जवहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तवहीं ॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई ॥
निर्मल मन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा ॥

भेद लेन पठवा दससीसा। तवहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥

जग महँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहिं निमिष महँ तेते ॥

जौ सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाई ॥

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत ॥४४॥

सादर तेहि आगे करि वानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥

दूरिहि ते देखे दोउ भ्राता। नयनानन्द दान के दाता ॥

भूयो ददर्श श्रीरामं छबिधामायतोरसम् ।
आजानुबाहुं श्यामाङ्गं प्रणतार्तिहरं परम् ॥ २८ ॥
मृगराजकटिं मञ्जुकञ्जारुणविलोचनम् ।
अनेककोटिकन्दर्पदर्पहाननशोभितम् ॥ २९ ॥
क्षणं निमील्य नेत्रे चावतस्थे पुलकाश्रुभृत् ।
पुनर्धैर्य्यं समालम्ब्य राममूचे वचो मृदु ॥ ३० ॥
त्राता रक्षःकुले जातो भ्राता लङ्कापतेरहम् ।
पापाशयः स्वभावेन तामसं वपुराश्रितः ॥ ३१ ॥
तमःप्रियो यथोलूकः श्रुत्वा कीर्तिमिहागतः ।
शरणागतदीनार्तिहर त्रायस्व मां प्रभो ॥ ३२ ॥
दण्डवत्पतितो भूमावेवमुक्त्वा विभीषणः ।
दयार्द्रहृदयो रामस्तद्दैन्येनोत्थितोऽचिरम् ॥ ३३ ॥
विशालं बाहुमालम्ब्य रामस्तस्य सहानुजः ।
हृदयेन समाश्रित्य स्थापयामास सन्निधौ ॥ ३४ ॥
कुशलं तेऽपि लङ्केश कुस्थाने वसतिस्तव ।
अहोरात्रं खले वासः कथं धर्मावहं सखे ॥ ३५ ॥
अतिनीतिविदस्तेऽहं रीतिं जानामि भोः सखे ।
तुभ्यं विशुद्धसत्त्वत्वादनीतिर्नैव रोचते ॥ ३६ ॥
यातनायतने वासो निरयेऽपि सुहृद्वरम् ।
विदधीत विधातेह न दुष्टसहवासिताम् ॥ ३७ ॥
अथो विभीषणः प्रोचे दासं मत्वानुकम्पनात् ।
त्वत्पाददर्शनाच्चाद्य कुशलं मम राघव ॥ ३८ ॥
जीवस्य कुशलं तावन्नैव स्वप्नेऽपि शर्म च ।
हित्वा शोकालयं कामं यावत्त्वां नैव सेवते ॥ ३९ ॥
लोभमात्सर्य्यमोहाभिमानास्तावद्धृदि स्थिताः ।
नान्तर्वससि यावत्त्वं धनुर्बाणनिषङ्गभृत् ॥ ४० ॥
तमिस्रासमतोलूकरागद्वेषसुखावहा ।
तावद्यावत्प्रतापस्ते तपनोऽन्तःस्थितो न नु ॥ ४१ ॥

वहुरि राम छविधाम विलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी।।
भुज प्रलंव कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन।।
सिंघ कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मन मोहा।।

नयनं नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु वाता।।

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुर त्राता।।

सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा।।

दो०—श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुवीर।।४५।।

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा।।

दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज विसाल गहि हृदय लगावा।।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। वोले वचन भगत भयहारी।।
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर वास तुम्हारा।।
खल मंडली वसहु दिनराती। सखा धरम निवहै केहि भाँती।।
मैं जानौं तुम्हारि सव रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।।

वरु भल वास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहि विधाता।।

अवं पद देखि कुशल रघुराया। जौ तुम्ह कीन्ह जानि जन दाया।।

दो०—तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ, सोक धाम तजि काम।।४६।।

तव लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना।।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।।
ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुख कारी।।
तव लगि बसत जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं।।

निर्भयः कुशलोऽद्यास्मि भवत्पादाब्जदर्शनात् ।
तवानुकूलता स्वामिन्नस्ति तापत्रयापहा ॥ ४२ ॥

सदाधमस्वभावोहं पापाचारो निशाचरः ।
परिंरेभे हृदा तं मां मुनिध्यानातिगो भवान् ॥ ४३ ॥

दयानन्दनिधे सराम भागधेयमहो मम ।
विधीशसेव्यं यत्कञ्जद्वन्द्वं दृष्टं मयाद्य यत् ॥ ४४ ॥

उवाच रामो भो मित्र स्वभावं शृणु मामकम् ।
भुशुण्डिर्गिरिजाशम्भुर्ये विजानन्ति नित्यशः ॥ ४५ ॥

मदमोहोपधीन् हित्वा मामियाच्छरणं यदि ।
द्रोही चराचरस्यापि तं साधुं विदधाम्यहम् ॥ ४६ ॥

पितरौबान्धवा दाराधामार्थान्वियसूनवः ।
सर्वेषां ममतातन्तूनुपसंहृत्य सर्वथा ॥ ४७ ॥

रज्जुं विधाय यदि मे बद्ध्वा चञ्चलमानसम् ।
हर्षशोकस्पृहाहीनो समदृग्यश्च सज्जनः ॥ ४८ ॥

हृदि लुब्धस्य धनवन्मम स्वान्ते वसत्यसौ ।
प्रिया मे त्वादृशाः सन्तस्तदर्थं विग्रहग्रहम् ॥ ४९ ॥
करोमि नान्यदस्तीह देहधारणकारणम् ॥ ५० ॥

येषां हृदि स्थिता नित्यं मत्पदप्रीतिरुत्तमा ।
नियमातिदृढा येषां विपत्तावपि निश्चला ॥ ५१ ॥

सगुणोपासका मे वै परमार्थपरिग्रहाः ।
मम नामजपासक्तास्ते वै प्राणसमा मम ॥ ५२ ॥

एते त्वयि गुणास्सर्वे लङ्केश श्रूयतामिदम् ।
तेनैव कारणेनासि मम त्वमतिवल्लभः ॥ ५३ ॥

कपियूथं समाकर्ण्य रामस्य वचनं शुभम् ।
दयानिधे जयजयेत्युवाच मुदितं तदा ॥ ५४ ॥

कर्णामृतं रामवचः श्रावंश्रावं विभीषणः ।
बिभ्रत्स्वान्तामितप्रेम हृदयेनैव तृप्यति ॥ ५५ ॥

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥
तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भव सूला ॥
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहि प्रभु हरषि हृदय मोहि लावा ॥

दो०—अहो भाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव, सेव्य युगल पद कंज ॥४७॥

सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जानि भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥

जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना ॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे ॥

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह नहिं आन निहोरे ॥

दो०—सगुन उपासक पर हित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज पद प्रेम ॥४८॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे ॥

राम बचन सुनि बानर जूथा। सकल कहहिं जय कृपा बरूथा ॥

सुनत बिभीषन प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥

श्रीरामचरणाम्भोजं गृहीत्वा स पुनः पुनः ।
उवाच श्रूयतां देव चराचरजगत्पते ॥ ५६ ॥
अन्तर्य्यामिन्मम स्वान्ते काप्यासीद्वासना पुरा ।
त्वत्पादप्रीतिसरिति सा चाप्यद्य निमज्जिता ॥ ५७ ॥
पावनीमतिपापानां सदा शिवमनःप्रियाम् ।
कृपालो सांप्रतं भक्तिं मह्यं देह्यनपायिनीम् ॥ ५८ ॥
इत्थं निशम्य श्रीराम एवमस्त्विदमब्रवीत् ।
पारावारस्य सलिलं पुण्यमानय सत्वरम् ॥ ५९ ॥
ऊचेऽथयद्यपि सखे राज्यं नैव त्वमिच्छसि ।
तथापि निष्फलं न स्याज्जगत्यां दर्शनं मम ॥ ६० ॥
एवमुक्त्वा ततो रामो लङ्काराज्ये विभीषणम् ।
अभ्यषिञ्चत्तदा पुष्पवृष्टिरासीद्विहायसः ॥ ६१ ॥
ज्वलन् रावणकोपाग्नौ चण्डात्मश्वासमारुतैः ।
रामेण रक्षितोऽखण्डराज्यं दत्त्वा विभीषणः ॥ ६२ ॥
रावणाय शिरोदानाद्दत्ता सम्यक्छिवेन या ।
विभीषणाय रामेण सा ससङ्कोचमर्पिता ॥ ६३ ॥
हित्वेदृशं प्रभुं येऽन्यं भजन्ति गिरिजे जनाः ।
शृङ्गपुच्छविहीनास्ते पुरुषाः पशवः स्मृताः ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकलकलिकलुषविध्वंसने
उमामहेश्वरसंवादे सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

स्वीकृतो रामचन्द्रेण भक्तभावे विभीषणः ।
स्वभाव एष रामस्य कपियूथप्रियोऽभवत् ॥ १ ॥
सर्वान्तर्यामिसर्वज्ञो रागद्वेषविवर्जितः ।
नीतित्राता सर्वरूपो रक्षोघ्नो मायया नरः ॥ २ ॥
पप्रच्छ रामो लङ्केशं नक्राहिझषदुस्तरम् ।
तरेयं कथमम्भोधिमगाधं ब्रूहि मे सखे ॥ ३ ॥
विभीषणः प्रत्युवाच श्रूयतां रघुनायक ।
शक्तः कोटिसमुद्राणां शोषणे तव सायकः ॥ ४ ॥

पद अंबुज गहि बारहिं बारा । हृदय समात न प्रेम अपारा ॥

सुनहु देव सचराचर स्वामी । प्रनतपाल उर अन्तरजामी ॥
उर कछु प्रथम वासना रही । प्रभु पद प्रीति सरित सो वही ॥
अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी ॥

एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । माँगा तुरत सिंधु कर नीरा ॥

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरस अमोघ जग माहीं ॥

अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥

दो०—रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड ।
जरत विभीषन राखेउ, दीन्हेउ राज अखंड ॥४९ (क)॥
जो संपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिये दस माथ ।
सोइ संपदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥४९ (ख)॥

अस प्रभु छाँड़ि भजहिं जे आना । ते नर पसु बिन पूँछ बिषाना ॥

निज जन जानि ताहि अपनावा । प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा ॥

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी । सर्ब रूप सब रहित उदासी ॥
बोले बचन नीति प्रतिपालक । कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥
सुनु कपीस लंकापति बीरा । केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥
संकुल मकर उरग झष जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥
कह लंकेस सुनहु रघुनायक । कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥

तथापीयं नीतिरीतिरादर्त्तव्या त्वयाधुना ।
उपेत्य सागरं तस्य विनयं कुरु राघव ॥ ५ ॥
स्वीयं कुलगुरुं सिन्धुं मत्वोपायं समाचर ।
विनाऽऽयासं तरेद्येन कपिभालुवरूथिनी ॥ ६ ॥
प्रत्यवोचत्ततो रामः सदुपायं सखे वद ।
करिष्ये यदि दैवस्य साहाय्यम्मे भविष्यति ॥ ७ ॥
रामवाक्यं समाकर्ण्य लक्ष्मणो दुःखितोऽभवत् ।
तस्मै न रुरुचे मन्त्र एष रामं स चाब्रवीत् ॥ ८ ॥
काशा दैवस्य हे नाथ क्रोधेनाब्धिं विशोषय ।
दैवं समवलम्बन्ते केवलं कातरा नराः ॥ ६ ॥
अनुजोक्तं समाकर्ण्य विहस्योवाच राघवः ।
एवमेव विधास्ये त्वं धैर्य्यं धारय मानसे ॥ १० ॥
रामोऽनुजं प्रबोध्यैवमुपगम्य सरित्पतिम् ।
प्रणम्य शिरसास्तीर्य्य पूतदर्भानुपाविशत् ॥ ११ ॥
यदैव रामशरणमुपयातो विभीषणः ।
तत्पश्चाद्रावणो दूतांस्तदैव प्राहिणोद्द्रुतम् ॥ १२ ॥
ते निरीक्ष्याखिलं वृत्तं छद्मना कपिरूपिणः ।
शरणागतवात्सल्यं रामस्य हृदि तुष्टुवुः ॥ १३ ॥
स्फुटं रामप्रतापं ते वर्णयन्तिस्म राक्षसाः ।
रामप्रेम्णाच्छलं हित्वा रक्षोदेहान्प्रपेदिरे ॥ १४ ॥
तदा रिपुचरानेतानवेत्य कपिकुञ्जराः ।
नियम्य निखिलानेतान्सुग्रीवान्तिकमाययुः ॥ १५ ॥
आदिदेशेति सुग्रीवः सर्वे श्रृण्वन्तु वानराः ।
भग्नाङ्गान्सविधायैनाँल्लङ्कां प्रेषयताचिरम् ॥ १६ ॥
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा कपयः परिधाविताः ।
बद्ध्वा तान् परितः सेनां भ्रामयामासुरुद्भटाः ॥ १७ ॥
नानाविधं पुनश्चैतांस्ताडयामासुरोजसा ।
दीनार्तभाषिणोप्येनान् गृहे गन्तुं न तत्यजुः ॥ १८ ॥

यद्यपि तदपि नीति असि गाई। विनय करिअ सागर सन जाई ।।

दो०—प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु कपि धारि ।।५०।।

सखा कही तुम्ह नीक उपाई। करिअ दैव जौ होइ सहाई ।।

मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम वचन सुनि अति दुख पावा ।।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिय सिंधु करिय मन रोसा ।।
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ।।
सुनत विहँसि बोले रघुवीरा। ऐसइ करव धरहु मन धीरा ।।

अस कहि प्रभु अनुजहिं समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई ।।
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिर नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ।।
जवहिं विभीषन प्रभु पहिं आए। पाछे रावन दूत पठाए ।।

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, सरनागत पर नेह ।।५१।।

प्रगट वखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा विसरि दुराऊ ।।

रिपु के दूत कपिन्ह तव जाने। सकल वाँधि कपीस पहिं आने ।।

कह सुग्रीव सुनहु सव वानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर ।।

सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। वाँधि कटक चहुँ पास फिराए ।।

वहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे ।।

प्रवृत्ताः पुनरेतेषां नासाकर्णस्य कर्त्तने ।
तैर्दत्तं रामशपथं श्रुत्वा निववृतिरे ततः ॥ १९ ॥
लक्ष्मणस्तावथाहूय कृपयामोचयत्तदा ।
रावणार्थं विलिख्याथ पत्रं दत्त्वाऽब्रवीदिदम् ॥ २० ॥
दत्त्वा पत्रं रावणाय चरा एवं निरूप्यताम् ।
इदमुक्तं लक्ष्मणेन कुलघ्न त्वमिदं पठ ॥ २१ ॥
पुनर्मुखेन ब्रूतेति वाचिकं मम रावणम् ।
मिल रामं देहि सीतां नोचेत्कालस्तवागतः ॥ २२ ॥
नत्वा लक्ष्मणमादौ ते चेलुस्तद्गुणभाषिणः ।
अथ लङ्कां समासाद्य लङ्केशं प्राणमंस्तदा ॥ २३ ॥
विहस्य रावणोऽपृच्छत्कुशलं वदतः स्वकम् ।
आसन्नमृत्योर्मद्भ्रातुर्वार्त्तामपि च निर्भयाः ॥ २४ ॥
भुञ्जानो राज्यसम्पत्तिं लङ्कां तत्याज यः शठः ।
दुर्भाग्यो निरयं गत्वाऽवश्यं कीटो भविष्यति ॥ २५ ॥
ब्रूतर्क्षकीशसैन्यस्य वृत्तं यत्कालनोदितम् ।
प्राप्तं तज्जीवनत्राता दयालुः सागरोऽभवत् ॥ २६ ॥
ममातिसाध्वसं नित्यं वर्त्तते हृदये ययोः ।
तयोस्तापसयोर्ब्रूत प्रवृत्तिं मां चराधुना ॥ २७ ॥
मिलितौ तौ निवृत्तौ वा श्रावं श्रावं यशो मम ।
किन्न ब्रूतारिसैन्यस्य प्रतापं चकिताः कुतः ॥ २८ ॥
कृपया यमथोदन्तं शात्रवं परिपृच्छसि ।
तथामर्षं विहायैव मन्यस्व वचनानि नः ॥ २९ ॥
यदा कनीयांस्ते भ्राता रामेण मिलितस्तदा ।
लङ्काराज्येऽभिषिक्तः स श्रीरामेण कृपालुना ॥ ३० ॥
ज्ञात्वास्मांस्तावकान् दूतान् दृढं बद्ध्वा कपीश्वराः ।
नानाविधानि दुःखानि दातुं ववृतिरे तदा ॥ ३१ ॥
पुनरस्मच्छत्रवोनासाच्छेदनायोद्यताः समे ।
श्रीरामशपथेनैव मुमुचुस्तेऽन्यथा न माम् ॥ ३२ ॥

जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥

सुनि लछिमन सब निकट बुलाए। दया लागि हँसि तुरत छुड़ाए॥

रावन कर दीजेहु यह पाती। लछिमन वचन वाँचु कुलघाती॥

दो०—कहेउ मुखागर मूढ़ सन, मम संदेस उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा काल तुम्हार॥५२॥

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत वरनत गुन गाथा॥
कहत राम जस लंका आए। रावन चंरन सीस तिन्ह नाए॥
विहँसि दसानन पूछी वाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खवरि विभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥
करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥

पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्ररित चलि आई॥
जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु विचारा॥
कहु तपसिन्ह कै वात वहोरी। जिन्ह के हृदय त्रास अति मोरी॥

दो०—की भई भेंट कि फिरि गए, श्रवन सुजस सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, वहुत चकित चित तोर॥५३॥

नाथ कृपा करि पूछेहु जैसे। मानहु कहा क्रोध तजि तैसे॥

मिला जाइ जव अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥

रावन दूत हमहिं सुनि काना। कपिन्ह वाँधि दीन्हे दुख नाना॥

श्रवन नासिका काटइ लागे। राम सपथ दीन्हे हम त्यागे॥

हेनाथ रामचन्द्रस्य सैन्यं त्वं परिपृच्छसि ।
शतकोटिमुखेनापि वर्णितुं तन्न शक्यते ॥ ३३ ॥
विकटास्यातिभयकृन्नानावर्णर्क्षवानराः ।
सर्वेष्वल्पबलः सोस्ति यो लङ्कामदहत्कपिः ॥ ३४ ॥
नानारूपाभिधाः शूरा विशालबलबुद्धयः ।
विकराला नचैतेषां सेना केनापि वर्ण्यते ॥ ३५ ॥
गौरारुणश्याममुखा दन्तमुष्टिनखायुधाः ।
अतिकायाः कालकल्पा वृक्षभूधरधारिणः ॥ ३६ ॥
रामप्रतापात्प्रबला दृश्यन्ते नेकवानराः ।
नीलोङ्गदो दधिमुखः केशरी पनसो नलः ॥ ३७ ॥
द्विविदो विकटास्यश्च मयन्दो जाम्बवांस्तथा ।
एते सुग्रीवतुल्याऽन्ये गणिता ईदृशा भटाः ॥ ३८ ॥
रामानुकम्पातिबला त्रिलोकीं जानते तृणम् ।
स्वामिन्कथा का सेनायाः पद्माष्टादशयूथपाः ॥ ३९ ॥
ईदृक्कोऽपि कपिर्नास्तियो न जेता मृधेतव ।
क्रोधावेशवशात्सर्वे मर्दयन्ति करान् स्वकान् ॥ ४० ॥
न दत्ते योद्धुमादेशं श्रीरामः करुणाकरः ।
शोषयामो वयं सिन्धुं मीननक्रादिसंकुलम् ॥ ४१ ॥
पूरयामोऽथवाऽद्यैव विशङ्कटधराधरैः ।
रजसा मेलयामो वा चूर्णयित्वा दशाननम् ॥ ४२ ॥
वदन्ति वचनान्येवं सैन्ये सर्वे बलीमुखाः ।
पुनःपुनश्च गर्ज्जन्ति स्वभावेनैव निर्भयाः ॥ ४३ ॥
मन्यामहे ते ग्रसितुं लङ्कामभिलषन्ति हि ।
स्वतः शूरास्तथा रामपक्षात्ते भालुवानराः ॥ ४४ ॥
विजेतुं शक्नुवन्त्याजौ यमकोटीस्त्वया सह ।
श्रीरामस्य बलं तेजो बुद्धेर्विपुलतामपि ॥ ४५ ॥
न सहस्रशताहीशाः शक्नुवन्ति प्रभाषितुम् ।
इषुणैकेन शक्तोऽपि समुद्रशतशोषणे ॥ ४६ ॥

पूछेहु नाथ राम कटकाई । वदन कोटि सत वरनि न जाई ॥

नाना वरन भालु कपि धारी । विकटानन विसाल भयकारी ॥
जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा । सकल कपिन्ह महँ तेहि वल थोरा ॥
अमित नाम भट कठिन कराला । अमित नाग वल विपुल विसाला ॥

दो०—द्विविद मयन्द नील नल, अंगद गद बिकटासि ।
दधिमुख केहरि निसठ सठ, जामवन्त बल रासि ॥५४॥

ए कपि सव सुग्रीव समाना । इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ॥

राम कृपा अतुलित वल तिन्हहीं । तृन समान त्रैलोकहिं गनहीं ॥
अस मैं सुना श्रवन दसकंधर । पदुम अठारह जूथप वन्दर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हहि जीतइ रन माहीं ॥
परम क्रोध मीजहिं सव हाथा । आयसु पै न देहिं रघुनाथा ॥
सोषहिं सिंधु सहित झष व्याला । पूरहिं न त भरि कुधर विसाला ॥

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा । ऐसेइ वचन कहहिं सव कीसा ॥

गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका । मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका ॥

दो०—सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिर पर प्रभु राम ।
रावन काल कोटि कहँ, जीति सकहिं संग्राम ॥५५॥

राम तेज वल बुधि विपुलाई । सेष सहस सत सकहि न गाई ॥
सक सर एक सोखि सत सागर । तब भ्रातहिं पूँछेउ नय नागर ॥

तथापि नयविद्रामः पप्रच्छ तव बान्धवम् ।
तद्वाक्येनाम्बुधेर्मार्गं याचते स कृपान्वितः ॥ ४७ ॥
एवं चरोक्तमाकर्ण्य विहस्योवाच रावणः ।
यद्रामस्येदृशीबुद्धिः सहायाः कपयस्ततः ॥ ४८ ॥
धृष्टवाग्भीरुरेवासौ भिक्षते सागरं हठात् ।
मया रिपुबलं ज्ञातं रे मूर्खास्तं मुधा स्तुथा ॥ ४९ ॥
मन्त्री विभीषणो यस्य क्व तस्य जयवैभवम् ।
दुष्टवाक्यं निशम्यैवमतिक्रोधातुराश्चराः ॥ ५० ॥
विदित्वावसरं पत्रं निष्काश्य व्याहरन्निदम् ।
अदो रामानुजप्रेष्टं पत्रं वाचय वाचय ॥ ५१ ॥
निशम्य लिखितं चात्र हृदयं शीतलं कुरु ।
सव्यहस्तेन तत्पत्रमगृह्णाद्रावणः शठः ॥ ५२ ॥
पुनराहूय सचिवान् वाचयामास तत्तदा ॥ ५३ ॥
अन्तःप्रसाद्यवचनैर्मा घातय कुलं शठ ।
न पास्यन्ति हरीशान्ता अपि त्वां रामवैरिणम् ॥ ५४ ॥
भव रामपदाब्जालिर्विभीषण इवाथवा ।
पतङ्गः सान्वयो मूर्ख रामसायकपावके ॥ ५५ ॥
श्रुत्वा लेखमिमं भीतः सस्मितो रावणोऽवदत् ।
यथा भूस्थोम्बरग्राही तथालेखस्तपस्विनः ॥ ५६ ॥
शुकनासस्तदोवाच यथार्थं ते वचः प्रभो ।
निरस्य प्राकृतं गर्वं किन्तु स्वान्ते विचारय ॥ ५७ ॥
हित्वा मर्षं मम वचः श्रूयतां राक्षसेश्वर ।
हेनाथ रामचन्द्रेण विरोधं त्वं परित्यज ॥ ५८ ॥
स्वभावेन मृदूरामः समस्तभुवनेष्वपि ।
तवापराधान् विस्मृत्य मिलन्तं त्वां दयिष्यते ॥ ५९ ॥
ममोपदेश एतावान् दशानन विधीयताम् ।
रघुनाथाय रामाय वैदेही सम्प्रदीयताम् ॥ ६० ॥

तासु वचन सुनि सागर पाहीं । माँगत पन्थ कृपा मन माहीं ॥

सुनत वचन विहँसा दससीसा । जौ असि मति सहाय कृत कीसा ॥

सहज भीरु कर वचन दृढ़ाई । सागर सन ठानी मचलाई ॥
मूढ़ मृषा का करसि वड़ाई । रिपु वल बुद्धि थाह मैं पाई ॥
सचिव सभीत विभीषन जाके । विजय विभूति कहाँ जग ताके ॥

सुनि खल वचन दूत रिसि वाढ़ी । समय विचारि पत्रिका काढ़ी ॥

रामानुज दीन्ही यह पाती । नाथ वँचाइ जुड़ावहु छाती ॥

विहँसि वाम कर लीन्हीं रावन । सचिव वोलि सठ लाग वचावन ॥

दो०—बातन्ह मनहिं रिझाय सठ, जनि घालसि कुल खीस ।
राम विरोध न उबरसि, सरन विष्नु अज ईस ॥५६ (क) ॥
की तजि मान अनुज इव, प्रभु पद पंकज भृंग ।
होइ कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग ॥५६ (ख)॥

सुनत सभय मन मुख मुसकाई । कहत दसानन सबहि सुनाई ॥
भूमि परा कर गहत अकासा । लघु तापस कर वाग विलासा ॥
कह सुक नाथ सत्य सव वानी । समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी ॥

सुनहु वचन मम परिहरि क्रोधा । नाथ राम सन तजहु विरोधा ॥

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ । जद्यपि अखिल लोककर राऊ ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिहीं । उर अपराध न एकौ धरिहीं ॥
जनकसुता रघुनाथहिं दीजै । एतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥

सीतार्पणं यदा तेन व्याहृतं रावणं प्रति ।
तदैव रावणो मूढः पादेन तमताडयत् ॥ ६१ ॥
रावणस्य पदौ नत्वा शुकनासः पदाहतः ।
यत्रास्ते करुणासिन्धू रामस्तत्र समागमत् ॥ ६२ ॥
स श्रीरामं प्रणम्याथ जगादोदन्तमात्मनः ।
रामानुकम्पया देवि स्वकीयां सद्गतिं गतः ॥ ६३ ॥
अगस्त्यशापाद्विज्ञानी स मुनीराक्षसोऽभवत् ।
मुहुर्मुहूरामपादौ प्रणम्य स्वाश्रमं ययौ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये उमामहेश्वरसंवादे सकलकलिकलुष-विध्वंसने सुन्दरकाण्डे एकादशा सर्गः ॥ ११ ॥

अथातीते त्र्यहे नोरीचक्रेब्धिर्विनयं जडः ।
क्रोधेनोचे तदा रामो नास्ति प्रीतिर्भयं विना ॥ १ ॥
लक्ष्मणानय भद्रन्ते सशरं मे शरासनम् ।
अद्यैव शोषयाम्येन नदीशं पावकेषुणा ॥ २ ॥
कुटिलेन समं प्रीतिर्विनयश्च शठम्प्रति ।
दानोपदेशः कृपणे नीतिवार्ताऽतिलोभिनी ॥ ३ ॥
विरागोक्तिर्विषयिणी ज्ञानोक्तिर्ममतारते ।
विधीयते जडैर्यैस्ते दोग्धुमिच्छन्ति खम्पयः ॥ ४ ॥
क्रोधिने कथिता क्षान्तिः कामिने च हरेः कथा ।
ऊषरे बीजवापस्य फलाय परिकल्पते ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वा रघुपतिः समौर्वीकं व्यधाद्धनुः ।
प्रागभीष्टं मतमिदं लक्ष्मणायाप्यरोचत ॥ ६ ॥
करालशरसन्धानादब्ध्यन्तश्चोत्थितोऽनलः ।
अभूवन् व्याकुला नक्रा सत्वरं सर्पकच्छपाः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा जीवान् दह्यमानान् विप्रो भूत्वाऽम्भसाम्पतिः ।
हैमपात्रे मणीन्नीत्वा मानं हित्वा समागतः ॥ ८ ॥

जंव तेहि कहा देन बैदेही । चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही ॥

नाइ चरन सिर चला सो तहाँ । कृपासिंधु रघुनायक जहाँ ॥

करि प्रनाम निज कथा सुनाई । राम कृपा आपनि गति पाई ॥

रिषि अगस्त्य कर साप भवानी । राछस भयउ रहा मुनि ज्ञानी ॥
बंदि राम पद वारहिं वारा । मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा ॥

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीति ।
बोले राम सकोप तव, भय बिनु होइ न प्रीति ॥५७॥

लछिमन वान सरासन आनू । सोषौं वारिधि विसिख कृसानू ॥

सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुन्दर नीती ॥

ममता रत सन ज्ञान कहानी । अति लोभी सन विरति वखानी ॥

क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि कथा । ऊसर बीज वए फल जथा ॥

अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । यह मत लछिमन के मन भावा ॥

संधानेउ प्रभु विसिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥
मकर उरग झष गन अकुलाने । जरत जन्तु जलनिधि जव जाने ॥
कनक थार भरि मनि गन नाना । बिप्र रूप आएउ तजि माना ॥

निग्रहेणैव संसाध्यो नीचो न विनयेन हि ।
छेदेन रम्भा फलति परिषेकेण नाम्भसा ॥ ९ ॥

श्रीरामचरणौ स्पृष्ट्वा बभाषे भीत अर्णवः ।
मामकीनोह्यवगुणः क्षम्यतां साम्प्रतं प्रभो ॥ १० ॥

प्रकृत्यैव जडा एते खं भूमिरनिलोऽनलः ।
सृष्टच्चै त्वन्माययोद्भूता विचेष्टन्ते तवाज्ञया ॥ ११ ॥

सीमानं त्वत्कृतं बिभ्रज्जनोऽयं शासितस्त्वया ।
बाढं ताड्या ग्राम्यपशुस्त्रीशूद्रपणवा इति ॥ १२ ॥

भवत्प्रतापाच्छुष्येयं व्रजेत्सैन्यं यशश्च मे ।
यथेष्टमाशु ते कुर्यामलङ्घ्याज्ञो यतो भवान् ॥ १३ ॥

रामः श्रुत्वाब्धिदीनोक्तिं विहस्योच्चै दयानिधिः ।
अनुतिष्ठ तथोपायं कपिसैन्यं तरेद्यथा ॥ १४ ॥

ततो बभाषेऽकूपारः स्वामिन् यत्नो निशम्यताम् ।
तरेदनीकिनी येन शोषणेन विना मम ॥ १५ ॥

नलनीलावुभौ बन्धू बाल्ये लब्धाशिषा वृषेः ।
प्रतापात्ते तरिष्यन्ति स्पृष्टा आभ्यां महानगाः ॥ १६ ॥

अहं चापि प्रतापं ते हृदि संस्थाप्य भोःप्रभो ।
यथाशक्ति विधास्यामि साहाय्यं तत्र कर्मणि ॥ १७ ॥

विधिनानेन भो स्वामिन्सेतुं निर्मापयाधुना ।
गायेयुर्येन ते कीर्त्ति जनास्त्रैलोक्यवासिनः ॥ १८ ॥

ममोत्तरतटस्थायि पापराशिसरस्त्वदः ।
चापारोपितरोषेणानेन त्वं परिशोषय ॥ १९ ॥

सागराधिं निशम्येत्थं रामः कारुणिको द्रुतम् ।
सद्यः शरेण संशोष्याम्भोधिं प्रासादयत्तदा ॥ २० ॥

पौरुषं रामचन्द्रस्य महद्वीक्ष्य पयोनिधिः ।
उक्त्वा चरित्रं सकलं प्रस्थितस्तं प्रणम्य च ॥ २१ ॥

दो०—काटेहि पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पै नव नीच ॥५७॥

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥

गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥

तव प्रेरित माया उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथिन्ह गाए ॥
प्रभु आएसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥
प्रभु भल कीन्ह मोहिं सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरिय कीन्ही ॥
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

प्रभु प्रताप मैं जाव सुखाई। उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करउँ सो बेगि जो तुम्हहिं सोहाई ॥

दो०—सुनत विनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरइ कपि कटक, तात सो कहहु उपाइ ॥५९॥

नाथ नील नल कपि दोउ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिन्ह के परस किए गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई ॥

यहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइअ ॥

एहि सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी ॥

सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा ॥

देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥

एवं सिन्धौ गते धाम्नि श्रीरामो मुमुदे तदा ।
जयरामयशोधाम प्रोचुः सर्वेऽतिर्हर्षिताः ॥ २२ ॥

इदं चरित्रं परमं पवित्रं सुखास्पदं संशयशोकमोषम् ।
महेशगीतं कलिकल्मषघ्नं शुद्धाशये स्थापय हेभुशुण्डे ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रस्य गुणान् सुमङ्गलान् गायन्ति शृण्वन्ति च ये गतस्पृहाः ।
तरन्ति ते प्राग्जलयानमन्तरा भवाम्बुधिं हेगिरिराजनन्दिनि ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये उमामहेश्वरसंवादे

सुन्दरकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

छन्द—निज भवन गवनेउ सिंधु, श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ।
यह चरित कलिमल हर जथामति दास तुलसी गायऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन विषाद रघुपति गुनगना।
तजि सकल आस भरोस गावहिं सुनहिं संतत सठ मना॥

दो०—सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलजान॥६०॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने ज्ञान
संपादनो नाम पंचमः सोपानः।

॥ इतिसुन्दरकाण्ड समाप्तः॥

अथ सुन्दरकाण्डस्य क्लिष्टशब्दानां व्याख्या

प्रथमः सर्गः

श्लोक संख्या

२. जग्ध्वा, अर्थात् भुक्त्वा, (अद्धातोः त्वाप्रत्ययान्तं रूपमिदम्) ।

,, सहित्वा, सहनं कृत्वा ।

५. उत्पत्योत्पत्य, वारं वारं उड्डयनं कृत्वा, पुनः पुनः उत्प्लुत्य ।

७. श्रमापनोदनम्, विश्रान्तिः, श्रमनिवारणम् ।

,, मैनाकसत्तम, अतिशयेन वहुषु सन् इति सत्तमः ।
मैनाकश्चासौ सत्तमः, तत्सम्बुद्धौ ।

१०. नागमातरम्, सुरसानाम्नीं नागानां मातरम् ।
अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मश्च तक्षकः ।
कुलीरः कर्कटः शङ्खश्चाष्टौ नागाः प्रकीर्त्तिताः ॥—
इत्युक्तानामष्टानां नागानाम् जननीम् ।

१५. द्वात्रिंशतामूर्त्तिम्, द्वौ च त्रिंशच्चेति द्वात्रिंशत्, तैः द्वात्रिंशतायोजनैः
अष्टाविंशत्युत्तरैक शतक्रोशैर्मितां स्वमूर्त्तिमाकारम् ।

२२. समुद्रस्थायिनी, समुद्रे जलनिधौ तिष्ठति तच्छीला इति, समुद्रनिवासिनी ।

,, भीमविक्रमा, बिभेति अस्मात् इति भीमः, भीमः भयकारकः विक्रमः पराक्रमः
यस्याः सा ।

२३. उत्पत्तुम्, ऊर्ध्वं गन्तुम्, उड्डयितुमिति यावत् ।

२५. रेरिह्राणावतारेण, स्वाधःपतनारम्भेण ।

२८. समुत्प्लुत्य, सम्यक् उत्पतनं कृत्वा ।

३०. आलुलोके, दृष्टवान्, ददर्श, अपश्यत् ।

३७. क्षपाटाः, क्षपायां रात्रौ अटन्ति इति क्षपाटाः, निशाचराः राक्षसाः ।

३८. पञ्चषाश्च, पञ्च च षट् च पञ्चषाः ।
राक्षसैः व्यापादितानां श्रुतिविदां संख्येयम् ।

द्वितीयः सर्गः

श्लोक संख्या

२. **मसीवर्णम्**, कज्जलवर्णम् ।
१०. **वैकल्यम्**, मूर्च्छाम् ।
१६. **अवक्तव्ये**, अवर्णनीये ।
१९. **वलीमुखाः**, सुग्रीवादयः वानराः ।
२२. **उत्कोचम्**, कार्यसाधनाय प्रदत्तं अन्यायपूर्णद्रव्यम्, रिश्वत इति भाषायाम् ।
२३. **मृगयित्वा**, अन्वेषणं कृत्वा ।
२६. **कः सज्जनानामावासः**, साधुपुरुषाणामावासः कः इति काकुः, नेत्यर्थः ।
२९. **साधुसंसर्गात्**, साधुभिः सम्भाषणादि सम्बन्धेन ।
३७. **रघूद्वहः**, उत्कृष्टं रघुकुलं वहतीति—अर्थात् रामचन्द्रः ।
 ,, **वराके**, निस्सहाये, दीने ।
४२. **विभीषणसखे**, विभीषणश्चासौ सखाः विभीषणसखाः, तत्सम्बुद्धौ हे विभीषणसखे ।
५६. **पल्लवाच्छन्नः**, पल्लवैः आच्छन्नः, पल्लवचय-निलीनः ।

तृतीयः सर्गः

१. **चित्रवेषः**, चित्रं वेषो यस्य सः, मनोहरवेषः, मोहकवस्त्रधारी ।
२. **सामादिभिः**, सामदामदण्डभेदादिभिः चतुर्भिःनयैः ।
६. **मुधा**, वृथा ।
९. **मेऽपकृतम्**, मे मम रावणस्य अपकृतम्, अपमानम् ।
१२. **रावणासिम्**, रावणस्य असिः रावणासिस्तम् ।
 ,, **हे चन्द्रहास**, हे खड्ग ।
 ,, **शीतनिशानिशितधारया**, शीता चासौ निशा शीतनिशा चन्द्रिकारात्रिः, तया निशिता तीक्ष्णा या धारा (सम्पूर्ण खड्गभागः) तया ।
२०. **निकृत्तविंशतिभुजः**, निकृत्ताः विंशतिभुजाः यस्य सः, छिन्न समस्तभुजः ।
३६. **अशोक प्रत्तमङ्गारम्**, अशोकवृक्षविशेषेण प्रदत्तमङ्गारम् ।
३७. **चकितचित्ता**, रत्नजटितां मुद्रिकां दृष्ट्वा रामस्याङ्गुलीयकमिति परिचीय सीता विस्मयं प्राप्ता—यतः जेतुं अशक्यः रामः केनापि पराजितः इति विस्मयकारकम् ।
 ,, **हर्षेण च विषादेन विवशा**, रामस्याजय्यत्वात् रामस्य अतुलवल प्रभावात् हर्षः । स्वस्वामिनः लीलामानयविग्रहस्य रामभद्रस्य स्वपराजयनाट्यस्मरणात् विषादान्विता । इत्थं अनुकूल-प्रतिकूल विविधभावान्विता जाता ।

चतुर्थः सर्गः

श्लोक संख्या

१. खरघातिनः, खरं हन्ति इति खरघाती, तस्य ।

४. मृदुवपुः, मृदु च सद् वपुः मृद्वपुः, कोमलं शरीरम् ।

अश्रुप्रवाहपूर्णाक्षी, अश्रूणां प्रवाहः अश्रुप्रवाहः, तेन पूर्णे अक्षिणी यस्याः सा ।

१२. सर्पश्वाससमोज्ज्वाताः, सर्पस्य श्वासास्तैः समाः सदृशाः विषाक्तसर्पनिःश्वासतुल्याः ।

१५. वाचिकम्, सन्देशम् । सन्देशो वाग्वाचिकम् ।

४१. स्वबन्धुवधसंजात कोपोतुलपराक्रमः, स्वस्य बन्धुः स्वबन्धुः तस्य वधः तेन संजातः कोपो यस्य सः । अतुलः पराक्रमः यस्य सः ।

जल्दी करो

पञ्चमः सर्गः

२५. अहंयू, अहङ्कारवान् ।

३०. सनाथः, नाथेन सहितः सनाथः ।

सचिवैः, मन्त्रिगणैर्वेष्टितः ।

विभीषणः, रावणानुजः ।

षष्ठः सर्गः

३४. ज्ञानम्, प्रमाणम्, यथा रामेण अंगुलीयकम्प्रेषितम् तथैव सीतयाऽपि प्रमाणचिह्नं प्रदेयम् ।

४१. तदेवाह, अशुद्धः, शुद्धस्तु तदेवाहः ।

सप्तमः सर्गः

२. परपारम्, परश्चासौपारस्तम्, अन्यतीरम् ।

२३. परिरभ्य, आश्लिष्य ।

२६. प्रागुत्तीर्य पुरीदग्धा वारिधिं तीर्णवानहम् इति शुद्धा पंक्तिः ।

२७. यामिकः, प्रहरी ।

३६. जानकीजाने, जानकी जाया यस्यासौ जानकि जानिः, तत्सम्बुद्धौ हे जानकीजाने ।

„ अव्याहृता किल, अकथिता सती वरम् ।

किल इति निश्चयेन ।

४०. मद्गतिः, ममरक्षकरूपेण ध्यानम् ।

सनीरनीरजाक्षः, नीरजे इव अक्षिणी नीरजाक्षिणी, नीरेण सहिते सनीरे, सनीरे नीरजाक्षिणी यस्य सः सनीर नीरजाक्षः, आनन्दाश्रुपूरित कमलनयनः ।